शोधादर्श
78

बिहार प्रदेश में राजगिर के विपुलाचल पर भगवान महावीर की
प्रथम देशना स्थली पर निर्मित समवसरण मन्दिर

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

डॉ. शशि कान्त एवं सौ. मंजरी जैन के दाम्पत्य की हीरक जयंती :

मंजरी जी शशि कान्त जी को पुष्प हार पहना रही हैं

समधी श्री बिजय लाल जैन द्वारा डॉ. शशि कान्त का शॉल ओढ़ा कर अभिनन्दन

सुपुत्र चि. नलिन कान्त जैन द्वारा स्वागत सम्बोधन

भ्रातृज चि. अंशु जैन 'अमर' द्वारा शुभ कामना सम्बोधन

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक : (स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
पूर्व सम्पादक : (स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक : डॉ. शशि कान्त
सम्पादक : श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक : श्री सन्दीप कान्त जैन
: श्री अंशु जैन 'अमर'
: सौ. डॉ. अलका अग्रवाल

प्रकाशक

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004, टेलीफोन सं. (0522) 2451375

ई–मेल : shodhadarsh@gmail.com

णाणं णरस्स सारं – सच्चं लोयम्मि सारभूयं
ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है
सत्य ही लोक में सारभूत तत्व है

शोधादर्श - 78

वीर निर्वाण संवत् 2540 दिसम्बर 2013 ई.

विषय क्रम

1	सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	4
2	गुरुगुण–कीर्तन : कवि महोपाध्याय समयसुन्दर	श्री रमा कान्त जैन	5–7
3	भगवान महावीर का संघ परिवार	श्री अजित प्रसाद जैन	8–9
4	जीयात् श्री वीरनाथस्य शासनम्	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	10–15
5	आओ शीघ्र धरा पर प्रभुवर! (पद्य)	डॉ. परमानन्द जड़िया	15
6	वीर शासन का जन्म स्थान राजगृह	डॉ. शशि कान्त	16–25
7	युक्त्यैनुशासनम् एवं युक्त्यनुशासनालंकार	डॉ. गोकुल चन्द्र जैन	26–30
8	मेरे प्यारे महावीर (पद्य)	श्री लूणकरण नाहर जैन	30
9	सहजानन्द वर्णी का संस्कृत साहित्य को योगदान	डॉ. मोहन चंद	31–33

10	जीवन का यथार्थ बोध (पद्य)	श्री मदन मोहन वर्मा	33
11	कुछ प्रसिद्ध जैनाचार्य	श्री स्वराज्य चन्द्र जैन	34–39
12	जैन धर्म का अर्थबोध	सौ. गीता जैन	40–41
13	चाची जी	श्री कैलाश नारायण टण्डन	42–46
14	नारी सशक्तिकरण (पद्य)	श्री मुक्तेश जैन 'सरस'	46
15	कहां आग से आग बुझी है (पद्य)	श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश'	47
16	खोने का सुख पाकर देखो (पद्य)	श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश'	48
17	जिजीविषा (पद्य)	श्री अमर नाथ	49
18	इतिहास–सन्देश (पद्य)	डॉ. शशि कान्त	50
19	**Hindu View of Vegetarianism**	श्री बी.पी. सिन्हा	51–73
20	शाकाहारी जागरूक हों!	डॉ. चीरंजी लाल बगड़ा	74–75
21	कषाय और परिग्रह	डॉ. शशि कान्त	76–77
22	साहित्य सत्कार	डॉ. शशि कान्त	78–83

अभिनन्दन ग्रन्थ (महाकवि 'विनोद');
जैन होने का अर्थ; बोधिसत्व उवाच;
हीरक माला; श्रीमद्भगवद्गीता;
डॉ. परमानन्द जड़िया की कृतियां;
मुरली के स्वर; पाण्डुलिपियों के प्रकाशित पृष्ठ;
जिन स्तुति; काल चक्र; क्षमावाणी; आत्मा ही परमात्मा है;
तत्त्वार्थमणिप्रदीप; **Gems of Jaina Wisdom**

23	अभिनन्दन	डॉ. शशि कान्त	84–92
24	शोक संवेदन	डॉ. शशि कान्त	93–94
25	आभार	श्री नलिन कान्त जैन	95
26	समाचार विविधा	श्री नलिन कान्त जैन	96–99

अखिल भारतीय प्राकृत विद्या फाउण्डेशन
मानव जीवन में श्रावकाचार की भूमिका
केन्या में आतंकवादी हमला
दून वैली हाई स्कूल
जैन मिलन लखनऊ
आचार्य ज्ञान सागर स्मृति डाक टिकट
पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी
वालचन्द इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलाजी, सोलापुर
डॉ. शशि कान्त सह सौ. मंजरी जैन के
दाम्पत्य की हीरक जयंती

27 पाठकों के पत्र 100–103
डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव
श्री कैलाश नारायण टण्डन
डॉ. परमानन्द जड़िया
श्री बी.डी. अग्रवाल
श्री मदन मोहन वर्मा
28 शोधादर्श के आजीवन अभिदाता
एवं वर्ष 2013 के शुल्क प्रदाता 104
29 आवश्यक सूचना कवर पृ. 4

चित्र परिचय

कवर पृ.1

विपुलाचल पर भगवान महावीर की प्रथम
देशना स्थली पर निर्मित समवसरण मंदिर

कवर पृ. 2

डॉ. शशि कान्त एवं सौ. मंजरी जैन के दाम्पत्य की हीरक जयंती :

1 मंजरी जी शशि कान्त जी को पुष्प हार पहना रही हैं
2 समधी श्री बिजय लाल जैन द्वारा डॉ. शशि कान्त का शॉल ओढ़ा कर अभिनन्दन
3 सुपुत्र चि. नलिन कान्त जैन द्वारा स्वागत सम्बोधन
4 भ्रतृज चि. अंशु जैन 'अमर' द्वारा शुभकामना सम्बोधन

कवर पृ. 3

5 डॉ. शशि कान्त द्वारा आभार निवेदन
6 श्री लूण करण नाहर जैन द्वारा शुभ कामना
7 सुपौत्री आयु. मेहा द्वारा फोटो–कोलाज भेंट
8 फोटो–कोलाज के साथ दम्पति

सम्पादकीय

वर्तमान जैन धर्म अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के शासन से अनुबद्ध है। भगवान महावीर का शासन विपुलांचल पर दी गई उनकी प्रथम देशना से प्रारंभ होता ह। ईस्वी सन् से 557 वर्ष पहले श्रावण कृष्ण प्रतिप्रदा को समवसरण में भगवान की देशना के साथ उनका शासन प्रारंभ हुआ था। इस वर्ष जुलाई में श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन उनके शासन को प्रारम्भ हुए 2570 वर्ष हो गये हैं। उक्त महत्वपूर्ण घटना को स्मरण करते हुए प्रस्तुत अंक में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, श्री अजित प्रसाद जैन और डॉ. शशि कान्त के लेख उस विषय पर विशेष रूप से सम्मिलित किये गये हैं। मुखपृष्ठ पर विपुलाचल पर निर्मित समवसरण मंदिर का चित्र भी इसी संदर्भ में दिया गया है।

भगवान महावीर के उपदेश का विशिष्ट लक्ष्य समाज में समता एवं सद्भाव तथा पशु/पक्षियों के प्रति मनुष्यों की भांति ही करुणा भाव का प्रचार करना था। सभी प्राणी संसार के बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं और परस्पर विचारों के प्रति माध्यस्थ भाव रख कर शांति और सद्भाव पूर्वक जीवन यापन कर सकते हैं, भगवान के उपदेश का सार था। उनके करुणापरक उपदेश का प्रतिफलन मनुष्यों के लिए शाकाहार में हुआ। शाकाहार पर इस अंक में समग्र चिन्तन से प्रेरित लेख दिया जा रहा है।

हमें यह कहने में संकोच हो रहा है कि जिन महानुभावों को हम **शोधादर्श** भेजते हैं, उनकी ओर से समुचित प्रतिदान नहीं किया जाता है। **शोधादर्श** उन सभी पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादक/प्रकाशक को प्रत्यावर्तन में भेजा जाता है जो हमारी समिति के शोध पुस्तकालय को अपनी पत्र–पत्रिका भेजने का अनुग्रह करते हैं। विशेष रूप से सभी शोध संस्थानों को भी यथा सम्भव यह पत्रिका भेजी जाती है। जिन विद्वान मनीषियों के लेखादि तथा समीक्षा के लिए रचनाऐं प्राप्त होती हैं, उनको भी यह पत्रिका साभार भेजी जाती है। इनके अतिरिक्त भी विचारों के संचरण के लिए यह पत्रिका प्रबुद्ध लोगों को भेजी जाती है। इसके मूल्य में निरन्तर वृद्धि हो रही है क्योंकि देश में व्याप्त मंहगाई का प्रभाव इस पर भी पड़ता है और इसी कारण वर्ष में तीन के बजाय दो अंक निकालने का निश्चय किया गया। हमारा विनम्र निवेदन है कि पत्रिका का शुल्क देने के लिए हमारे प्रेमी पाठकगण कृपया विचार करें। यह भी निवेदन है कि अपने परिवर्तित पते की सूचना अवश्य देवें।

वीर शासन के इस नववर्ष में और जन सामान्य में प्रचलित ईस्वी सन् 2014 के नव वर्ष के लिए मंगल कामना के साथ,

सद्भावी,

नलिन कान्त जैन

सम्पादक

31–12–2013

कवि महोपाध्याय समयसुन्दर

– श्री रमा कान्त जैन

सत्रहवीं शती ईस्वी में हुए विद्वान कवि महोपाध्याय समयसुन्दर का साहित्य काफी विशाल है। उन्होंने गद्य और पद्य – दोनों ही विधाओं में पर्याप्त मात्रा में साहित्य–सृजन किया था। मारवाड़ के सांचौर स्थान पर संवत् 1620 (1563 ई0) में पोरवाड़ वंश में जन्मे समयसुन्दर श्वेताम्बर यति जिनचन्द्र सूरि के शिष्य थे। सन् 1592 ई0 में मुगल बादशाह अकबर के आमन्त्रण पर जब यति जी खम्भात से लाहौर बादशाह से मिलने गये तब उनके अन्य शिष्यों के साथ युवा समयसुन्दर भी गये थे। कहा जाता है कि कवि समयसुन्दर ने संस्कृत में पचीस तथा ब्रज भाषा में तेइस कृतियों का प्रणयन किया था। कवि समयसुन्दर ने लगभग 82 वर्ष की वय में अहमदाबाद में संवत् 1702 (1645 ई.) की चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को अनशन आराधनापूर्वक देह त्याग किया था।

सीताराम चौपाई

उनकी पद्य रचनाओं में **सीताराम चौपाई** सबसे बड़ी रचना है। उसका परिमाण 3700 चौपाई बताया जाता है। उक्त कृति में जैन परम्परा की रामकथा को काव्य में गुम्फित किया गया है। गत शताब्दी में इसका सम्पादन नाहटा द्वय श्री अगरचन्द और श्री भंवरलाल ने किया था और उक्त सम्पादित कृति का प्रकाशन संवत् 2019 (1962 ई0) में करने का श्रेय शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, को है।

सीताराम चौपाई के अतिरिक्त उनकी अन्य उल्लेखनीय कृतियां हैं – **समयसुन्दर रास पंचक, अष्टलक्षी, कुसुमाञ्जलि** और **मृगावती चरित्र।**

अष्टलक्षी

अष्टलक्षी में एक पद के आठ लाख प्रामाणिक अर्थ दिये हुए बताये जाते हैं।

कुसुमाञ्जलि

563 स्फुट रचनाओं के संकलन **कुसुमाञ्जलि** में कवि के व्यापक ज्ञान और कवित्व शक्ति की प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। भाषा, छंद, शैली और ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण है। सन् 1630 ई. में

मुगल बादशाह शाहजहां के राज्यकाल में गुजरात और दक्षिण में भीषण दुष्काल पड़ा था। **कुसुमाञ्जलि** में उक्त अकाल का बड़ा ही जीवन्त, हृदयद्रावक और प्रभावक वर्णन है। कवि द्वारा प्रयुक्त छंद और राग तत्कालीन ब्रजभाषा में प्रचलित पद शैली के अध्ययन हेतु सहायक हैं। इस कृति का सम्पादन भी उक्त नाहटा द्वय ने किया था और सम्पादित कृति को श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी की भूमिका के साथ अपनी 'श्री अभय जैन ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित किया था।

मृगावती चरित्र

मृगावती चरित्र की रचना सं. 1668 (1611 ई.) में सिंध प्रान्त में जैसलमेर निवासी श्रावक करमचन्द रीहड़ की प्रेरणा से की गयी थी। इस कृति का दूसरा नाम **मोहनवेल** भी है। इस रचना की विशेषता यह है कि इसमें जैन ऐतिहासिक चरित्र मृगावती का चित्रण तीन खंडों में किया गया है, जिनमें क्रमशः 13, 13 एवं 12, इस प्रकार कुल 38 ढालें हैं। कुल गाथा संख्या 745 है। एक ढाल सिन्धी भाषा में है तथा शेष प्राचीन हिन्दी में हैं।

प्रथम खण्ड में शील–महात्म्य प्रस्तुत करने के बाद वैशाली गणतन्त्र के प्रमुख चेटक की पुत्री रानी मृगावती का चरित्र वर्णित है। वह वत्सदेश के अन्तर्गत कौशाम्बी नगरी के राजा शतानीक की पटरानी थी, दोनों ही विशिष्ट गुणों से परिपूर्ण आदर्श चरित्र थे। उनका मंत्री युगन्धर (यौगन्धरायण) परम स्वामिभक्त एवं नीतिनिपुण था। गर्भवती रानी को रक्त से परिपूर्ण तडाग में स्नान करने की इच्छा हुई। मंत्री ने उसकी इच्छा पूर्ण करने हेतु कुसुम्ब के फूलों को पानी में घुलवा दिया। रानी उस पानी में स्नान कर जैसे ही निकली भारण्ड पक्षी रानी को मांस पिण्ड समझ पंजों में उठा कर उड़ गया। चारों ओर रानी की खोज हुई, किन्तु रानी कहीं न मिल सकी। काफी समय बाद किसी ने राजा शतानीक को उनके नाम से अंकित रत्नजटित कंकण दिया जिसे राजा ने पहचान लिया। जंगल में विश्वभूति एवं वसुभूति के आश्रम में जाने पर राजा का रानी मृगावती से मिलन हो जाता है और वह रानी के साथ अपने राज्य को सोल्लास वापस आता है।

द्वितीय खंड में शतानीक एवं मृगावती के धार्मिकता से परिपूर्ण जीवन का रोचक वृतान्त है। एक दिन एक वीणा वादक ने राजदरबार में संगीत प्रस्तुत किया। इस संगीत में राजकुमार उदयन ने दोषों का उल्लेख

किया। इस पर राजा शतानीक द्वारा उदयन से पूछे जाने पर उसने बताया कि उसके पूर्व भव के महर्द्धिक नामक मित्र से यह विद्या उसे प्राप्त हुई थी। राजा शतानीक गीत, संगीत एवं शिल्पकला का प्रेमी था। उसने राजदरबार में चित्रांकन करवाया। एक चित्रकार ने रानी मृगावती के अंगुष्ठ मात्र को देखकर उसके सम्पूर्ण शरीर का चित्र बना दिया। राजा इसे देखकर अत्यंत प्रसन्न तो हुआ, किन्तु चित्रकार द्वारा रानी की जंघा पर तिल दिखाए जाने पर रुष्ट हो गया और उसके चरित्र पर शंका की, यद्यपि चित्रकार ने यह रहस्य बताने का प्रयास किया कि उसे यह विद्या यक्ष से प्राप्त हुई है, किन्तु राजा शतानीक ने उसका दाहिना हाथ कटवा दिया। चित्रकार ने यक्ष को पुनः प्रसन्न कर मात्र बायें हाथ से रानी मृगावती का चित्र बनाकर अवन्ति (उज्जैन) के राजा चण्ड प्रद्योत को भेंट किया। मृगावती के चित्र पर मोहित हो चण्ड ने कौशाम्बी पर आक्रमण कर दिया। इससे राजा और रानी दोनों को अपार दुःख हुआ। इस बीच अतिसार रोग से ग्रस्त होकर राजा की मृत्यु हो गई।

तृतीय खण्ड में कथा चालू है। रानी मृगावती ने चण्ड प्रद्योत से निवेदन किया कि पति की मृत्यु हो जाने के कारण कम से कम एक वर्ष पश्चात् ही वह उनके अधीन हो सकेगी, तब तक उसके पुत्र के लिए किला बनवा दें जिससे वह सुरक्षित हो जाये। रानी ने एक वर्ष बाद चण्ड प्रद्योत को कह दिया कि सती का शील कोई खंडित नहीं कर सकता और अपनी बात को बदल दिया।

भगवान महावीर के कौशाम्बी पहुंचने पर रानी मृगावती सपरिवार उनसे मिलने पहुंची। उधर चण्ड प्रद्योत भी भगवान महावीर के पास पहुंचा। रानी मृगावती भगवान महावीर की वाणी से वैराग्यवासित हो गई। फलस्वरूप उन्होंने रानी को चन्दनबाला की शिष्या के रूप में दीक्षा दिलवा दी। एक बार साध्वी मृगावती सूर्यास्त हो जाने के बाद भी भगवान महावीर की सभा में रुकी रही। इस पर गुरुणी चंदनबाला ने पर्याप्त उलाहना दिया। इससे दुःखी होकर उसने आत्म–आलोचना की जिससे उसे केवलज्ञान की प्राप्ति हो गयी। यह समाचार चंदनबाला को मिलने पर उसने पश्चाताप किया और आत्मनिन्दा के कारण उसे भी केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। कथा की परिपूर्णता मृगावती के निर्वाण से होती है। इसमें शील का महात्मय बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णित किया गया है। ✧✧✧

भगवान महावीर का संघ परिवार

– श्री अजित प्रसाद जैन

3 जुलाई, 2004 (श्रावण कृष्ण प्रतिपदा) को इस युग के अन्तिम तीर्थंकर भगवान वर्द्धमान महावीर के धर्म शासन को प्रारम्भ हुए 2561वर्ष हो गए। आचार्य गुणभद्र ने **उत्तरपुराण** (897 ई.) में भगवान महावीर के संघ परिवार का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार किया है –

"श्री वर्धमान स्वामी के इन्द्रों द्वारा पूजनीय 11 गणधर थे, 11 अंग और 14 पूर्वो के धारक 300 श्रुतकेवली थे, 9900 यथार्थ संयम को धारण करने वाले शिक्षक थे, 1300 अवधिज्ञानी थे, 700 केवलज्ञानी परमेष्ठी थे, 900 विक्रिया ऋद्धि के धारक थे, 500 पूजनीय मनःपर्यायज्ञानी थे और 400 अनुत्तरवादी थे, इस प्रकार सब मुनीश्वरों की संख्या 14000 थी। चन्दना को आदि लेकर 36000 आर्यिकाएं थीं, एक लाख श्रावक थें और तीन लाख श्राविकाएं थीं। असंख्यात देव–देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे।

इस प्रकार ऊपर कहे हुए बारह गणों से परिवृत्त भगवान ने सिंहासन के मध्य स्थित हो अर्ध–मागधी भाषा के द्वारा छह द्रव्य, सात तत्त्व, संसार और मोक्ष के कारण तथा उनके फल का प्रमाण, नय, निक्षेप आदि उपायों के द्वारा विस्तारपूर्वक निरूपण किया। भगवान का उपदेश सुनकर स्वाभाविक बुद्धिवाले कितने ही शास्त्रज्ञ सभासदों ने संयम धारण किया, कितनों ने ही संयमासंयम धारण किया और कितनों ने अपने भव्यात्म गुण की विशेषता से शीघ्र ही सम्यग्दर्शन धारण किया।" (**उत्तरपुराण**, श्लोक 373–378)

यह ध्यातव्य है कि भगवान महावीर के संघ परिवार में 700 केवलज्ञानी थे जब कि श्रुतकेवली केवल 300 थे। कदाचित् ये सभी केवलज्ञानी या इनमें से अधिकांश केवलज्ञान प्राप्ति के पूर्व श्रुतकेवली भी रहे हों, पर केवलज्ञान प्राप्ति के लिए श्रुतकेवली होना आवश्यक नहीं है और सभी श्रुतकेवली उसी भाव से केवलज्ञान भी नहीं प्राप्त करते जैसे कि अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी पर्यन्त 5 श्रुतकेवलियों ने केवल स्वर्गारोहण किया। यह ज्ञान के ऊपर भावों तथा चरित्र की निर्मलता की सर्वोपरि महत्ता को दर्शाता है।

भगवान के समवसरण में इन 700 केवलज्ञानियों के बैठने का स्थान गणधरों के बैठने के स्थान से नीचे होता था जबकि वे परमेष्ठी थे और

उनका आसन जिनेन्द्र देव के समकक्ष या कम–से–कम गणधर देवों के ऊपर, जो केवल श्रुतकेवली थे, होना चाहिए था। हमारी यह भी बहुत दिनों तक समझ में नहीं आया था कि केवलज्ञानी महात्मा आखिर भगवान के समवसरण में जाते ही क्यों हैं जबकि उनका आत्म विकास जिनेन्द्र देव के समान ही पूर्ण हो चुका होता है। फिर एक दिन अनायास ही समाधान सूझ गया। ये सभी केवलज्ञानी महामुनि गणधरों द्वारा दीक्षित मुनि होने के कारण तीर्थंकर देव के शिष्यानुशिष्य थे जो द्रव्यलिंग के साथ–साथ पूर्ण भावलिंगी भी थे तथा जो पूर्ण आस्था एवं मनोयोग से तीर्थंकर प्रभु का दिव्य धर्मोपदेश न केवल सुनते ही रहे थे तथा हृदयङ्गम करते रहे थे वरन् साथ–साथ ही अपने साध्वाचार को भी तदनुरूप ढालते रहे थे जिसका सुफल उन्हें अल्प अवधि में ही केवलज्ञान की परम सिद्धि के रूप में गणधरदेवों से भी पहले मिल गया। चूंकि गणधरदेव उनके गुरुवर्य थे, वे विनयशीलता के कारण उनके समकक्ष बैठते नहीं थे। भगवान महावीर का अन्तिम धर्मोपदेश जिसके आधार से **उत्तराध्ययन सूत्र** संकलित किया गया माना जाता है, उसमें उसका प्रथम अध्ययन ही **विनय श्रुत** है जिसमें आत्मोन्नति के लिए विनय पर अत्यधिक बल दिया गया है।

भगवान के संघ परिवार में इन 700 केवलज्ञानियों की उपस्थिति यह भी दर्शाती है कि भगवान का धर्मोपदेश पूर्णतया व्यावहारिक था तथा इतने महात्माओं ने उसका सम्यक् अनुसरण करके अल्प काल में ही केवलज्ञान की परम सिद्धि प्राप्त कर ली थी।

भगवान महावीर के संघ परिवार में आर्यिकाओं की संख्या मुनियों की अपेक्षा ढाई गुणा से अधिक थी। स्त्रियों में धर्मानुराग एवं व्रत आदि पालने की प्रवृत्ति आज भी पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक देखने में आती है। इसी प्रकार जब कि उनके संघ परिवार में एक लाख श्रावक थे श्राविकाओं की संख्या उसकी तिगुनी थी, जो उस समय प्रचलित बहु विवाह प्रथा तथा परिवार में एकाध विधवा होने के कारण रही होगी। ये सभी श्रावक–श्राविकाएं भगवान द्वारा उपदिष्ट श्रावकाचार के सभी नियमों का पालन करने वाले थे। भगवान में आस्था रखने वाले अव्रती ग्रहस्थों की संख्या तो अवश्य ही कहीं अधिक रही होगी।

(**शोधादर्श 53,** जुलाई, 2004 ई., से उद्धृत। – सम्पादक)

✧✧✧

जीयात् श्री वीरनाथस्य शासनम्

— डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

श्रमण तीर्थकरों द्वारा प्रतिष्ठापित धर्म–व्यवस्था का नाम ही **धर्मतीर्थ, धर्मशासन** या **जिनशासन** है। केवलज्ञान–प्राप्ति के उपरान्त प्रत्येक तीर्थंकर सच्चे सुख के साधन – मोक्षमार्ग – के उपदेश द्वारा अपने धर्मचक्र का प्रवर्तन करता है, धर्मतीर्थ का पुनरुद्धार करता है और अपना धर्मशासन स्थापित करता है। उस समय से लेकर अगले तीर्थंकर के शासन की स्थापना तक उसी तीर्थंकर का शासन चलता है और लोकप्रसिद्ध रहता है। इस प्रकार ऋषभादि पार्श्व (877–777 ई. पूर्व) पर्यन्त तेईस तीर्थंकरों ने अपने–अपने समय में अपने–अपने धर्मशासन की संस्थापना की थी।

इस परम्परा के अन्तिम तीर्थंकर, निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र वर्द्धमान वीरनाथ या महावीर थे। तीस वर्ष के भरे यौवन में बालब्रह्मचारी महावीर ने समस्त ऐहिक भोगों से विरक्त होकर महाभिनिष्क्रमण किया था और जैनेश्वरी दीक्षा लेकर उन्होंने तप, त्याग और संयम का दुस्तर मार्ग अपनाया था। बारह वर्ष पर्यन्त यत्र–तत्र विचरते हुए और उग्रातिउग्र तप विधान में लीन रहते हुए एक दिन जब वह ऋजुकूला नदी के तटवर्ती जृम्भिका ग्राम के बाहर शालवृक्ष की छाया में एक शिलापट्ट के ऊपर शुक्लध्यानस्थ अवस्था में आसीन थे, उन्होंने क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर समस्त घातियाकर्मो का पूर्णतया क्षय कर दिया और केवलज्ञान की सम्प्राप्ति की – वह अर्हतकेवलि पद को प्राप्त हुए। उस समय वैशाख शुक्ल दशमी का अपरान्ह था और चन्द्रमा हस्तोत्तर नक्षत्र में स्थित था।[1] यह घटना विक्रम पूर्व 500, 26 अप्रैल ईस्वी पूर्व 557 की है।[2]

केवलज्ञान प्राप्त हो जाने पर भी महावीर ने अपने धर्मचक्र का तत्काल प्रवर्तन नहीं किया। उक्त स्थान से विहार करके वह पंचशैलपुर (गिरिव्रज या राजगृही) के वैभार पर्वत पर पहुंचे। यह सुरम्य पर्वत शिशुनाग वंशी मगध सम्राट श्रेणिक बिम्बिसार की राजधानी राजगृही की सीमा पर उसके पश्चिम–दक्षिणी कोण पर स्थित था। आषाढ़ शुक्ल 15 के दिन इसी स्थान पर भगवान महावीर को विप्रश्रेष्ठ इन्द्रभूति गौतम जैसे महातेजस्वी एवं सर्वथैव समुपयुक्त गणधर शिष्य की प्राप्ति हुई, और उसके

नेतृत्व में उनके चतुर्विध संघ का संगठन हुआ।[3] इसी से आषाढ़ी पूर्णिमा लोक में **गुरु पूर्णिमा** के नाम से प्रसिद्ध हुई।

अगले दिन, श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के प्रातः काल उसी पंचशैलपुर के पूर्व–दक्षिण कोण पर स्थित एवं नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित सुरम्य विपुलाचल पर भगवान महावीर की समवसरण सभा जुड़ी। इस सभा में मुनि–आर्यिका–श्रावक–श्राविका रूप उनके चतुर्विध संघ के अगणित सदस्य उपस्थित थे। आत्मकल्याण के इच्छुक सभी भव्य प्राणी, सभी वर्गों एवं वर्णों के स्त्री–पुरुष ही नहीं पशु–पक्षी तक भी, बिना किसी भेदभाव के वहां एक ही स्थान पर साथ–साथ बैठे थे। मुनियों के नेता गौतम गणधर थे, आर्यिकाओं का नेतृत्व साध्वी चन्दना सती कर रही थीं, गृहस्थ पुरुषों के अग्रणी स्वयं मगध सम्राट श्रेणिक थे और स्त्रियों का नेतृत्व उनकी पट्टमहिषी चेलना कर रही थी। सभा के मध्य में गन्धकुटी पर भगवान विराजमान थे। ठीक सूर्योदय के समय जब कि रुद्रमुहूर्त्त और अभिजित नक्षत्र का योग था, श्रमणोत्तम अर्हत् महावीर का दिव्य उपदेश **सर्वसत्तवानांहितसुखाय** प्रारम्भ हुआ, उन्होंने अपना धर्मचक्र प्रवर्तन किया, उनके धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई, उनके धर्मशासन की स्थापना हुई और उनका तीर्थंकरत्व सार्थक हुआ। उस दिन वह जगद्गुरु हुए और यह पर्व **गुरुप्रतिपदा** के नाम से विख्यात हुआ। भारतवर्ष की सर्व प्राचीन और जैन परम्परानुसार अनादिकालीन कालगणना में श्रावण कृष्ण प्रतिपदा की यह तिथि वर्ष के प्रथम मास का प्रथम दिन भी थी। अतएव यह नवयुगारम्भ, नव वर्ष के प्रथम दिन, चतुर्थ काल की समाप्ति और पंचम काल के प्रारंभ से ठीक 34 वर्ष पूर्व (विक्रम से 500 वर्ष पूर्व, शक से 635 वर्ष पूर्व और ईसा से 557 वर्ष पूर्व, 1 जुलाई को) हुआ था।[4]

तत्पश्चात् तीस वर्ष पर्यन्त देश–देश में विहार करके, प्रतिदिन तीन–तीन बार निरन्तर तीर्थंकर महावीर ने बिना किसी भेद–भाव के संसार के समस्त प्राणियों के हित–सुख के लिये अपना दिव्य उपदेश दिया। इस अथक निस्वार्थ साधना से उस सर्वज्ञ–वीतराग–हितोपदेशी ने अपने सर्वकल्याणकारी धर्मशासन की प्रतिष्ठापना की थी, और तभी से उनकी धर्मव्यवस्था **वीरशासन** के नाम से प्रसिद्ध चली आती है।

संसाररूपी महासागर को पार करने में प्रधान निमित्त होने के कारण महावीर का शासन **तीर्थ** या **धर्मतीर्थ** कहलाया।[5] **जयधवल**

टीका में उद्धृत एक प्राचीन गाथा में रागद्वेषभयातीतजिनोत्तम वीरनाथ महावीर को संसारी प्राणियों के समस्त सन्देहों को दूर करने वाले धर्मतीर्थ का कर्ता कहा गया है।[6] स्वामी समन्तभद्र (2री शती) ने महावीर के तीर्थ को 'सर्वोदयतीर्थ' बताया है।[7] स्वामी विद्यानन्दि ने उसे प्राणियों के अभ्युदय के समस्त कारणों का हेतु सूचित किया है,[8] और मथुरा आदि के शुंग–शक–कुषाणकालीन प्राचीन जैनाचार्यो ने उसका उद्देश्य 'सर्वसत्त्वानां हितसुखाय' घोषित किया है।[9]

वास्तव में वीरशासन, बिना किसी भेद–भाव के, संसार के समस्त मनुष्यों का ही नहीं, वरन् प्राणीमात्र का सर्वतोमुखी उत्कर्ष, अभ्युदय, हित और सुख सम्पादन करने वाला धर्मशासन, धर्मतीर्थ या धर्मव्यवस्था है। इसी से गत 2515 वर्ष✦ से उसकी जय मनाई जाती चली आ रही है। कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, पूज्यपाद, सिद्धसेन, अकलंक, वीरसेन, हरिभद्र, जिनसेन, विद्यानन्दि, वादिराज, प्रभाचन्द्र, हेमचन्द्र आदि अनेक दिग्गज आचार्यो ने, अनेक राजा–महाराजाओं ने और जनसाधारण में अनगिनत श्रावक–श्राविकाओं ने इस वीरशासन की जय मनाई है, किन्तु आज जैसे मौखिक जय शब्दोच्चारण मात्र वाली जय नहीं, वरन् अपनी प्रतिभा, अपने सदाचरण एवं लोकोन्नायक कार्यकलापों द्वारा वीरशासन की सच्ची प्रभावना करके, उसे प्रभावक, सर्वविजयी और सर्वकल्याणकर चरितार्थ करके उसकी सार्थक जय मनाई है।

प्राचीन साहित्य ओर शिलालेखों में वीरशासन की ऐसी सार्थक जय मनाने वालों के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं, उनके जयघोष भी उन्हीं के अनुरूप स्फूर्तिदायक एवं उन्नायक होते थे। इन जयघोषों के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं––

1 तवजिन शासन विभवो,
ज्यति कलावपि गुणनुशासन विभवः।
दोषकशाऽसनविभवः,
स्तुवन्ति चैनं प्रभाकृशासन विभवः।।137।।

– समन्तभद्र (2री शती) – **स्वयम्भूस्तोत्र**

✦ लेख 17 जुलाई, 1958 ई. को प्रकाशित हुआ था। 1958 ई. में वीर शासन को प्रारंभ हुए 2515 वर्ष हुये थे। 2013 ई. में यह अवधि 2570 वर्ष हो गयी है।

2 जयति भगवाञ्जिनेन्द्रोः
गुाणरुन्द्रः प्राथितपरमकारुणिकः।
त्रैलोक्याश्वासकरी दयापताकोच्छ्रितः यस्य।।
—काकुत्स्थवर्म कदंब का शिलालेख (लगभग 400 ई0)

3 जयत्यर्हंस्त्रिलोकेशः सर्वभूतहितेरतः।
रागाद्यरि हरोनन्तोनन्त ज्ञानदृगीश्वरः।।
—कदंब मृगेशवर्म का ताम्रपत्र (लगभग 425 ई0)

4 जयत्यनन्त संसार पारावारैकसेतवः।
महावीरार्हतः पूताश्चरणाम्बुज रेणवः।।
—चालुक्य पुलकेशि प्रथम का अल्तेम लेख (542 ई0)

5 भद्दंमिच्छादंसण
समूहमइयस्य अमयसाररस्स।
जिणवयणस्स भगवओ
संविग्ग—सुहाहिगम्मस्स।।70।।
— सिद्धसेन — **सन्मतितर्क** (लगभग 600 ई0)

6 श्रीमत्परमगंभीर स्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनम् जिनशासनम्।।
— अकलंकदेव — **प्रमाणसंग्रह** (643 ई0)

जिनशासन की जय मनाने वाला यह अन्तिम श्लाोक सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रभावक सिद्ध हुआ। 9वीं शताब्दी से ही शिलालेखों के मङ्गलाचरण के रूप में इसका प्रयोग प्रारम्भ हो गया मिलता है, और 12वीं शती के उपरान्त तो यह श्लोक इस कार्य के लिये प्रायः रूढ़ हो गया। मध्यकालीन दक्षिण भारत के जैन शिलालेखों और अनेक ग्रन्थों में ही नहीं वरन् थोड़े से परिवर्तन के साथ अनेक जैनेतर ग्रन्थों एवं अभिलेखों में भी यह प्रयुक्त हुआ मिलता है। उपरोक्त 6 पद्यों के अतिरिक्त भी अन्य पचासों पद्य जिनशासन का जयघोष करने वाले उपलब्ध हैं।

श्रीमज्जैनं जयतु शासनम्!

पाद—टिप्पणी

1— ग्रामपुर—खे़ट—कर्वट—मटम्ब—घोषाकरान् प्रविजहार।
उग्रैस्तपो विधानैर्द्वादिशवर्षाण्यमर पूज्यः।।10।।

ऋजुकूलायास्तीरे शालद्रुम संश्रिते शिलापट्टे।
अपरान्हे षष्ठेनास्थितस्य खलु जृम्भकाग्रामे।।11।।
वैशाख सितदशम्यां हस्तोत्तर मध्यमाश्रिते चंद्रे।
क्षपकश्रेणयारूढ़स्योत्पन्नं केवलज्ञानम्।।12।।

— पूज्यपाद — **निर्वाणभक्ति** (5वीं शती)

प्रायः ऐसा ही कथन **धवल, जयधवल** नामक प्राचीन आगमिक टीकाओं (8वीं शती) में उद्धृत निम्नोक्त प्राचीनतर गाथाओं में भी पाया जाता है :—

गमइय छदुमत्थत्तं वारसवासणि पंचमासेय।
पण्णारसाणि दिणाणिय तिरयण सुद्धो महावीरो।।
उजुकूलणदीतीरे जंभियगामे वहि सिलावट्टे।
छट्टेणदावेंतो अवरण्हे पाय छायाए।।
वइसाह जोण्ह पक्खे दसमीए खवगसेढि मारुद्धो।
हंतूण घाइकम्मं केवलणाणं समावण्णो।।

2 The Jaina Sources of History of Ancient India, Chap.2

3 अथ भगवान्सम्प्रापद्दिव्यं वैभारपर्वतं रम्यं।
चातुर्वर्ण्य सुसंघस्तत्राभूद् गौतमप्रभृति।।13।।

— पूज्यपाद — **निर्वाणभक्ति**

4 इमिस्सेऽवसप्पणीए चउत्थ समयस्स पच्छिमे भाए।
चोत्तीसवाससेसे किंचिव सेसूणय संते।।
वासस्स पढममासे पढमे पक्म्खम्मि सावणे बहुले।
पाडिवद पुव्वदिवसे तित्थुपन्ननो दु अभिजम्मि।।
सावण बहुल पडिवदे रुद्दमुहुत्ते सुहोदए रविणो।
अभिजस्स पढम जोए जत्थजुगादी मुणेयद्य।।
पंचसेलपुरेरम्मे विउले पव्वदुत्तमे।
णाणा दुम समाइण्णे देवदाणव वंदिदे।।
महावीरेण अत्थो कहिओ भवियलोअस्य।

— **श्री धवल** (780 ई0)

सावण बहले पाडिव रुद्दमुहुत्ते, सुहोदए रविणो।
अभिजस्स पढम जोए जुगस्सआदी, इमस्स पुढं।।

— **तिलोयपण्णत्ति**, 1—70

5 'तरति संसार महार्णवं येन तत्तीर्थमिति'।

— विद्यानन्दि

6 णिस्संसयकरो वीरो महावीरो जिणुत्तमो।
रागदोसभयादीदो धम्मतीत्थस्सकारओ।।

7 सर्वान्तवत्तदगुण मुख्यकल्पं, सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं, **सर्वोदय** तीर्थमिदं तवैव।।61।।

— **युक्त्यानुशासनम्**

8 सर्वेषामभ्युदयकारणानां—हेतुत्वादभ्युदयहेतुत्त्वोपपत्तेः।

9 देखिये **Epigraphia Indica,** जिल्द 10, में एच. लूडर्स की ब्राह्मी शिलालेखों की सूची के अन्तर्गत जैन शिलालेख।

(**जैन सन्देश** का **शोध विशेषांक** डॉ. साहब के सम्पादकत्व में 17 जुलाई 1958 ई. को प्रारम्भ हुआ था। वीर शासन के प्रारंभ का स्मरण कराने हेतु अग्रलेख के रूप में यह लेख लिखा गया था। — सम्पादक)

आओ शीघ्र धरा पर प्रभुवर!

— साहित्य—भूषण डॉ. परमानन्द जड़िया

सब धर्मो में सत्य अहिंसा, सब धर्मो में न्याय।
सब में करुणा, दया, क्षमा है, सब में बहुत समुदाय।।
किन्तु स्वार्थ में अंध मनुज को नहीं सूझता पंथ।
व्यर्थ हुये सब वेद, बाइबिल, जैन—धर्म के ग्रंथ।।
बौद्ध न त्यागी तपी रहे अब, हुये तथागत मौन।
पूछ रहे हैं जैन भ्रमित हो, महावीर थे कौन।।
मुस्लिम आतंकी बन बैठे, नहीं दया का भाव।
ईसाई बन गये विलासी, भरी पाप से नाव।।
हिन्दू भूले धर्म सनातन, संध्या पूजा, पाठ।
व्याकुल हुई मनुजता, संस्कृति रोती आंसू आठ।।
कैसा युग यह चकाचौंध का, विस्मय में है बुद्धि।
हिंसक चोर जुआरी हैं सब, हावी हुई अशुद्धि।।
हे भगवान! किधर जायेगी नाव बिना पतवार।
आओ! शीघ्र धरा पर प्रभुवर! ले मानव अवतार!!

जड़िया निवास,189/51, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ—18

वीर–शासन का जन्म स्थान
राजगृह

– डॉ. शशि कान्त

{नवम्बर 1957 में एक पुरातत्व खोजी पर्यटक की दृष्टि से हमने राजगिर (राजगृह) की यात्रा की थी और उस समय उपलबध उस क्षेत्र की स्थिति तथा पुरातत्व सामग्री का उल्लेख नीचे प्रस्तुत लेख में किया गया है। इसका प्रकाशन **जैन सन्देश** के **शोध विशेषांक –1** में 17 जुलाई, 1958, को हुआ था।

इस बीच अप्रैल 1986 में विपुलाचल पर भव्य **समवसरण मंदिर** का निर्माण हुआ है जो भगवान महावीर की प्रथम देशना स्थली की याद दिलाता है। इस मंदिर के निर्माण का विचार वीर शासन की 2500वीं जयन्ती पर 1944 में उठा था और उस वर्ष श्रावण शुक्ला एकम् को वीर–देशना–स्मारक का शिलान्यास भी ब्र. पं.चन्दाबाई जी द्वारा करा दिया गया था। इस मंदिर की पंच कल्याणक प्रतिष्ठा 10 से 14 अप्रैल, 1986, को आयोजित की गई। भगवान महावीर की आयु (72 वर्ष) को ध्यान में रखते हुये 72 फुट ऊंचा **समवसरण मंदिर** और उसके तले में 2200 स्कवायर फिट का विशाल भवन बनाया गया है। मंदिर की मूल वेदिका पर तीर्थंकर महावीर की 4 पाषाण प्रतिमांए विराजमान की गईं हैं। मंदिर के चारों ओर चार कला पूर्ण स्तम्भों का निर्माण किया गया है। इस अंक के मुख पृष्ठ पर उक्त **समवसरण मंदिर** का चित्र दिया गया है।}

भगवान महावीर के जीवन वृत्त से सम्बन्धित चार स्थानों का विशेष महत्व है, यथा उनका जन्मस्थान कुण्डग्राम, केवलज्ञान–प्राप्तिस्थान जृम्भिकग्राम, देशनास्थान राजगृह और निर्वाणस्थान पावा। मध्यकालीन राजनीतिक उथल–पुथल ने केवल देशनास्थान को छोड़ कर अन्य तीन स्थानों के सम्बन्ध में भ्रान्तियां उत्पन्न कर दी थीं। आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणा ने उन विस्मृत स्थानों का अब बहुत कुछ पता लगा लिया है तदपि कुछ रूढ़ मान्यताएं सत्य की स्थापना में बाधक हो रही हैं। अब यह प्रायः निश्चित हो चुका है कि उनका जन्मस्थान बिहार प्रदेश में वर्तमान

मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ ग्राम का निकटवर्ती बसुकुण्ड है।[1] पण्डित नवीनचंद्र शास्त्री ने उनके केवल–ज्ञान–प्राप्ति स्थान को बिहार प्रदेश में मुंगेर से 50 मील दक्षिण और क्विल स्टेशन से 18–19 मील पर स्थित जमुई ग्राम से चीन्हने का प्रयत्न किया है।[2] प्रो. राजबलि पाण्डेय ने महावीर का निर्वाण स्थान पूर्वी उत्तर प्रदेश में गोरखपुर जिले में कसिया से लगभग 9 मील पूर्व–दक्षिण में पुराने कुशीनगर–वैशाली राजपथ पर स्थित वर्तमान फाजिलनगर को सूचित किया है।[3]

यहां यह उल्लेखनीय है कि महावीर के देशना स्थान के सम्बन्ध में किसी तरह की भ्रान्ति उत्पन्न नहीं हुई। जैन अनुश्रुति के अनुसार महावीर का प्रथम उपदेश श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन 557 वर्ष ईस्वी पूर्व राजगृह के विपुल पर्वत पर हुआ था। राजगृह को पटना जिले में बिहार शरीफ से 13 मील दक्षिण पश्चिम में स्थित राजगिर से चीन्हा गया है।[4] यहां जैन पुरातत्व यत्र–तत्र बिखरा पड़ा है। वैसे तो इस स्थान का बौद्ध और हिन्दू अनुश्रुति में भी पर्याप्त महत्व है परन्तु जैन अनुश्रुति में इसका विशेष महत्व है क्योंकि यहीं पर अन्तिम तीर्थंकर महावीर ने अपना प्रथम उपदेश देकर अपने तीर्थ की स्थापना की थी और उन्हीं का तीर्थ अभी तक चल रहा है। वैसे 20 वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ की भी यह गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान कल्याणकों की भूमि रही है और वासुपूज्य को छोड़ कर अन्य तेईसों तीर्थंकरों के समवशरण भी यहां आये थे। अन्तिम केवली जन्बूस्वामी की निर्वाण–भूमि भी यही कही जाती है। श्रेणिक, चेलना, अभयकुमार, कुणीक, रोहिणी चोर, सेठ धन्ना और शालिभद्र और आचार्य वैरदेव आदि अनेक ऐतिहासिक जिन भक्तों से इसका समबन्ध रहा है।

प्राचीन साहित्य में इस स्थान का विभिन्न नामों से उल्लेख मिलता है यथा गिरिव्रज, पंच–शैलपुर, राजगृह, कुशाग्रपुर, वसुमति और बार्हद्रथपुर। अब भी इसके दो नाम – राजगिर और पंच–पहाड़ी – प्रचलित हैं। राजगिर **राजगृह** का अपभ्रंश है। राजगृह नाम विशेष रूप से महावीर के समय में प्रचलित था जब राजा श्रेणिक के अधिनायकत्व में मगध राज्य ने उन्नति करना शुरू किया था और यह उसकी राजधानी थी। पंचशैलपुर या पंचपहाड़ी नाम इस बात का द्योतक है कि यह नगर पांच पहाड़ियों के बीच में स्थित था। वास्तव में यह एक उपत्यका में स्थित था जो चारों ओर से पहाड़ियों से घिरी हुई थी और जिसमें जाने के लिये उत्तर की ओर एक

बड़ा द्वार था। यह द्वार दो पहाड़ियों के सिरों के बीच में था। पश्चिम दिशा में भी एक सकरा रास्ता था। नगर उत्तर से दक्षिण की ओर फैला हुआ था और पूर्व से पश्चिम को संकुचित था।

उपत्यका अभी भी वैसे ही वर्तमान है। इसके भीतर उत्तर की ओर से प्रवेश करते हैं। प्रवेश करते ही बाईं ओर विपुल और दाहिनी ओर वैभार पहाड़ियां मिलती हैं। इन दोनों पहाड़ियों की तलहटी में बहुत से गर्म जल के सोते हैं जिनमें प्रमुख विपुल के नीचे **सूर्यकुण्ड** और **मखदूम कुण्ड** तथा वैभार के नीचे **सात धारा** और **ब्रह्म कुण्ड** हैं। वैभार के नीचे से ही तपोदा या सरस्वती भी बहती है। विपुल के बाद उसी श्रृंखला में रत्नगिरि है। उसके बाद थोड़ी दूर पर छठा–गिरि शुरू होता है। इसमें बौद्ध साहित्य में विख्यात गृद्धकूट स्थित है। इसी से लगा हुआ शैलगिरि है। ये सब लगभग एक पंक्ति में हैं। छठा–शैल के सम्मुख उदयगिरि की पर्वत श्रेणी है। इनके बीच में घना जंगल है और यह प्रायः सदैव ही अगम्य रहा। उदयगिरि के सम्मुख सोन–गिरि की पर्वत श्रेणी है। इन दोनों पहाड़ियों के बीच बानगंगा का दर्रा है जिसके नीचे वह छोटी सी पहाड़ी नदी बहती है। उसके ऊपर प्राचीन काल में भी एक पुल बना हुआ था। इस दर्रे का दृश्य बड़ा रमणीक है। राजगिर को पहाड़ियों की चोटियों पर से जाती हुई लगभग 25–30 मील के वृत्त में फैली हुई पाषाण खण्डों से बिना चूने गारे के निर्मित प्रायः प्रागऐतिहासिक दुर्ग–प्राचीर भी यहां से स्पष्ट दीख पड़ती है। इसकी गणना संसार के आश्चर्यों में की जाती है। सोनगिरि के बाद वैभारगिरि है। इन दोनों के बीच से एक संकरा रास्ता गिरिडीह को जाता है। प्राचीन राजगृहनगर वर्तमान विपुल, रत्न, उदय, सोन और वैभार के बीच की घाटी में बसा हुआ था। पहाड़ियों के ये नाम आधुनिक हैं और प्राचीन साहित्य में उल्लिखित नामों से इनकी संगत बैठाना सरल नहीं है। इन नामों को प्रचलित करने का श्रेय जैनों को ही है।

घाटी में दो स्थान पुरातत्व की दृष्टि से महत्व पूर्ण हैं जिनका जैन धर्म से विशेष सम्बन्ध है। सोनगिरि और वैभारगिरि के बीच की घाटी में उत्तर द्वार से बानगंगा जाने वाली सड़क से थोड़ा हट कर एक बड़ा अहाता है जिसे **मणियार मठ** कहते हैं। इसमें बहुत से मंदिरों के चिन्ह मिलते हैं। बीच में कुएं के सदृश एक गोल इमारत है, इसमें चूने

(Stucco) की कई मूर्तियां थी। सन् ई0 1860–61 में जब एलेक्जेन्डर कनिंघम ने इस स्थान को पहले पहल देखा था तो यह एक ऊंचा टीला था और उसके ऊपर 1780 ई. में निर्मित एक जैन मंदिर था। कनिंघम ने खुदाई से तीन मूर्तियां प्राप्त की थीं जिनमें से एक सप्तफण–छत्र से युक्त पार्श्वनाथ की मूर्ति थी।[5] ब्लाख ने 1905–06 ई. में जैन मंदिर गिरवा कर टीले की व्यवस्थित खुदाई की। इसके फलस्वरूप कुएं सदृश गोल मंदिर मिला और अन्य भी बहुत से मंदिरों के चिन्ह मिले जिनमें से एक स्थल पर लगभग 1ली– 2री शती ईस्वी की मथुरा शैली की पाषाण मूर्ति के भग्नांश मिले जो अब दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में हैं और जिन पर 'मणिनाग', 'भगिनी सुमागधी' 'पर्वतो विपुल' और 'राजा श्रेणिक' शब्द उत्कीर्ण हैं।[6] नाग–यज्ञों की मान्यता के प्रमाण जैन और बौद्ध साहित्य में मिलते हैं। श्रेणिक और विपुल का उल्लेख जैन साहित्य में ही आता है और जैन अनुश्रुति में ही इनका विशेष महत्व भी है। इस मूर्ति से यह स्पष्ट है कि ईस्वी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में वहां कोई जैन संस्थान स्थित था। जैन अनुश्रूति में इस स्थान की श्रेणिक की रानी चेलना के अथवा सेठ शालिभद्र के निर्माल्य कूप के रूप में भी मान्यता है।

मणियार मठ से थोड़ा आगे चलने पर वैभार के दक्षिण ढाल पर **सोन भण्डार गुफाएं** हैं। ये दो गुफाएं हैं। इनमें से एक दो मंजिली थी, लेकिन ऊपर की मंजिल और छत अब गिर चुकी है। दाहिनी ओर वाली गुफा के बाहर लगभग 3री–4थी शती की लिपि में दो पंक्तियों का एक लेख द्वार से बाईं ओर को खुदा हुआ है।

यह लेख निम्न प्रकार है :–

निर्वाणालाभाय तपस्वियोग्ये
शुभे गुहेऽर्हत्प्रतिमाप्रतिष्ठे,
आचार्यरत्नम् मुनिवैरदेवः
विमुक्तयेऽकारयदूर्ध्व तेजः।

इस का तात्पर्य है कि मुनि वैरदेव ने ये गुफायें जिनमें अर्हत् प्रतिमायें प्रतिष्ठित थीं, तपस्वि–योगी मुनियों के लिये निर्मित कराईं। और भी छोटे–छोटे लेख गुफा की दीवारों इत्यादि पर हैं, पर वे पढ़े नहीं जाते। गुफा का द्वार नीचे से ऊपर को थोड़ा सकरा होता गया है। इस गुफा के द्वार पर काले पत्थर की शिखरशैली की एक पुरानी चौमुखी मूर्ति रखी

है जिसमें प्रथम चार तीर्थंकर अपने लांछनों सहित अंकित हैं। बाई ओर वाली गुफा में दक्षिणी दीवार पर अन्दर की ओर तीर्थंकरों की 6 मूर्तियां उकेरी हुई हैं। उनमें 5 एक साथ हैं और एक अलग को है। पहली पांच में से दो खड्गासन पार्श्वनाथ की मूर्ति हैं। शेष में से एक पद्मप्रभु की है और तीन सिंह लांछन युक्त महावीर की। दाहिनी ओर वाली गुफा में भी ऐसे प्रस्तरांकन थे, परन्तु अब वे अस्पष्ट हैं।

विपुलगिरि पहला पहाड़ कहलाता है और यात्रा सामान्यतः इसी से शुरू की जाती है। पहाड़ पर जाने के लिये एक पक्का रास्ता 1944 ई. में वीर शासन की 2500वीं जयन्ती के अवसर पर बनाया गया था। उक्त जयन्ती का एक स्मारक भी बनाया गया था। ये दोनों ही उचित देखभाल के अभाव में अब ध्वस्तप्रायः हैं। इस पहाड़ पर 6 आधुनिक जैन मंदिर हैं जिनमें से एक श्वेताम्बरों का है और शेष दिगम्बरों के। इनमें से एक मंदिर बिजली गिर जाने के कारण त्याग दिया गया है। ऊपर जाते हुए नं.3 पर स्थित दिगम्बर मंदिर में चन्द्रप्रभु के प्राचीन चरण हैं। नं.4 में महावीर की काले पत्थर एक काफी पुरानी मूर्ति है। वेदीगृह के बाहर दीवार पर दो पुराने शिलापट्ट हैं जो लगभग 16वीं शती के प्रतीत होते हैं। इनमें से एक में विभिन्न पशु–पक्षियों पर आसीन कई देवियां हैं जो संभवतया विद्यादेवी हैं। शिलापट्टों पर चूने आदि के दाग पड़ गये हैं। थोड़ा सा आगे चलकर पहाड़ के उच्चतम बिन्दु पर एक पुराने जैन मंदिर के अवशेष हैं। कोई पुरानी मूर्ति वहां नहीं है। पहाड़ से सं. 1412 की 33 पंक्तियों की एक काव्यमय प्रशस्ति प्राप्त हुई थी, जो गांव के **नाहर भवन** में संगृहीत है।

रत्नगिरि इसी पहाड़ से जाते हैं। रत्नगिरि पर तीन मंदिर हैं – मुनिसुव्रतनाथ का नया दिगम्बर मंदिर, पुराना दिगम्बर मंदिर जिसमें महावीर के चरण हैं, और श्वेताम्बर मंदिर जिसमें चौमुखी चरण हैं।

रत्नगिरि से उतर कर जंगल में होकर सड़क पर आते हैं और वहां से **उदयगिरि** जाते हैं। पहाड़पर चढ़ाई सीधी है। ऊपर एक श्वेताम्बर मंदिर है जिसके चारों कोनों पर भी चार वेदी हैं। एक पुराना छोटा सा दिगम्बर मंदिर है जिसमें कुछ पुरानी मूर्तियां हैं, लेकिन वे विशेष महत्व की नहीं हैं। एक नया दिगम्बर मंदिर बन रहा है। दिगम्बर मंदिर से थोड़ा और ऊपर चढ़कर एक पुराने जैन मंदिर का खंडहर है। यह मंदिर

लगभग 8वीं शती ई. का अनुमान किया जाता है। यह चौमुखी शैली का प्रतीत होता है। बीच में गर्भ–गृह है जिसमें मूर्ति रखने के लिये आले बने हुए हैं और गर्भ–गृह के चारों ओर एक प्रदक्षिणा–पथ है।

उदयगिरि से उतर कर **सोनगिरि** पर जाते हैं। सोनगिरि 'श्रमण–गिरि' का अपभ्रंश है और उसका प्राचीन साहित्य में ऋषिगिरि के नाम से भी उल्लेख मिलता है। उसकी चट्टानें चिकनी और फिसलनी हैं। इस पर 1 श्वेताम्बर और 2 दिगम्बर मंदिर हैं। श्वेताम्बर मंदिर में मूर्ति अपने प्रकृत दिगम्बर रूप में ही है। एक छोटे से कमरे में कुछ सरदलें रखीं हैं, जो काफी प्राचीन हैं। इस पहाड़ से मणियार–मठ के पीछे की ओर को उतरते हैं।

अंतिम पहाड़ **वैभारगिरि** है जिसे पांचवां पहाड़ भी कहते हैं। पहले तीन पहाड़ दिगम्बरों के अधिकार में हैं और बाद के दो श्वेताम्बरों के। वैभार पर जाने के लिये सात धारा कुण्ड के पीछे से एक पक्का रास्ता बुद्ध जयन्ती के अवसर पर बनाया गया था। सबसे पहले एक छोटा सा श्वेताम्बर मंदिर मिलता है, उसी से थोड़ा बांई ओर जाकर दूसरा श्वेताम्बर मंदिर श्री धन्ना–शालिभद्र का है जिसमें सेठ धन्ना और शालिभद्र की मूर्तियां हैं। वहीं से एक पगडंडी सीधे दिगम्बर मंदिर के सामने पक्के रास्ते पर ले आती है। दिगम्बर मंदिर से थोड़ा पीछे को विशाल श्वेताम्बर मंदिर है जो आदिनाथ मंदिर कहलाता है। यहीं पक्का रास्ता समाप्त हो जाता है। उससे काफी आगे जाकर एक अन्य श्वेताम्बर मंदिर गौतम स्वामी का है जिसका अब पुनर्निमाण हो रहा है।

दिगम्बर मंदिर में सभी मूर्तियां पुरानी हैं, जिनमें से अधिकांश गुप्त–काल की हैं। इसी मंदिर से दाहिने हाथ थोड़ा नीचे जाने पर छह गुफायें मिलती हैं। बौद्ध अनुश्रुति की 'सप्तपर्णी गुफा' से इन्हें चीन्हा गया है। जैन अनुश्रुति में इन्हें रोहिणी चोर की गुफा कहा गया है। इस चोर ने चौरकर्म त्यागकर मुनिधर्म अंगीकार किया था।

आदिनाथ मंदिर से थोड़ा सा बाईं ओर हटकर एक पुराने जैन–मंदिर के खंडहर हैं। ये पुरातत्व की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। इससे थोड़ा और आगे एक प्राचीन शैव–मंदिर के भी भग्नावशेष हैं।

ध्वस्त जैन–मंदिर का समय लगभग 8 वीं शती ई. का अनुमान किया गया है। खण्डहर पुरातत्व विभाग के संरक्षण में है। समय निश्चित

करने में वहां पर प्राप्त दो मूर्तियों के लेखों की लिपि बहुत सहायक हुई है। मंदिर में पूर्व मुहाना मुख्य गर्भगृह है। उसके चारों ओर आंगन है, बाद चारों ओर कोठरियों की पंक्तियां हैं। गर्भ–गृह और बाहर की कोठरियों में मूर्ति रखने के लिये वेदियां हैं। कोठरियों की पीछेवाली पंक्ति उत्तर की ओर आगे को निकली हुई है और उसमें तीन और कोठरियां हैं। पूर्व की दीवाल से सटा हुआ एक और कमरा है जिसमें जाने के लिये उत्तर की ओर सीढ़ियां हैं और यह मुख्य मंदिर से नीचे की सतह पर बना हुआ है। इसमें भी चारों ओर मूर्तियां रखने के लिये दीवारों में वेदिका हैं। मूर्तियां अरक्षित पड़ी हैं। बहुत–सी गायब भी हो चुकी हैं। इनमें से कुछ मूर्तियां जैन–प्रतिमा–विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

मुख्य गर्भगृह में सामने की वेदी में एक पद्मासनस्थ तीर्थंकर मूर्ति है। सिंहासन पर दोनों कोनों पर एक–एक सिंह है और बीच में धर्मचक्र। मूर्ति की विशेषता पीठिका पर सिंहासन के नीचे करवट से सुखपूर्वक लेटी हुई स्त्री है। इससे भी अधिक विशेषता दिगम्बर मंदिर में विराजमान एक चौबीसी मूर्ति में है, जिसका वर्णन नीचे किया जायेगा। गांव में पुराने श्वेताम्बर मंदिर के भण्डार में एक मूर्ति के शीर्ष पर एक लेटी हुई स्त्री चित्रित है। ये अलंकरण जैन प्रतिमा–विज्ञान की दृष्टि से विशिष्ट हैं।

उक्त मूर्ति के बाईं ओर जटा मुकुट विभूषित ऋषभदेव की मूर्ति है। इस पर निम्नलिखित लेख है – **आचार्यवसन्तनदिर्दधर्मोऽयः** अर्थात् आचार्य वसन्तनन्दिन् का पुण्यदान। मुख्य गर्भगृह में ही एक चन्द्रप्रभु की मूर्ति भी है।

बाहर की कोठरियों में निम्नलिखित मूर्तियां हैं:–

1 ऋषभ की मूर्ति की एक पीठिका जिस पर दो बैल, भक्तजन, और लेख **'देवयधर्मोऽयंथीरोकस्य'** अंकित हैं।

2 अश्व लांछन से युक्त संभवनाथ और शंख लांछन से युक्त नेमिनाथ की मूर्तियां।

3 पार्श्वनाथ की पंचतीर्थी।

4 सप्त–फण–युक्त पार्श्वनाथ की मूर्ति।

5 पार्श्वनाथ की पद्मासनस्थ मूर्ति जिसमें पैर के तलवे बाहर की ओर हैं।

6 पद्मासनस्थ महावीर, जिनके छत्र के दोनों पार्श्व पर हाथी पर

आरूढ़ एक व्यक्ति अंकित है।

दाहिनी ओर की कोठरियों में से एक में एक मूर्ति है जिसमें एक वृक्ष के नीचे, जिसके शीर्ष पर आदि–जिन ध्यानमुद्रा में बैठे हैं, एक पुरुष और एक स्त्री ललितासन में बैठे हैं। स्त्री की गोद में उसके बायें घुटने पर एक बच्चा है।

पूर्व की दीवार से सटे हुए गर्भगृह में दो अस्पष्ट मूर्तियों के अतिरिक्त निम्नलिखित स्पष्ट मूर्तियां हैं –

1 महावीर की मूर्ति।

2 पंच–फण–युक्त पार्श्वनाथ और उनके ऊपर तीन अन्य तीर्थंकर।

3 काले पत्थर की खड्गासन नेमिनाथ की मूर्ति जिसका प्रभामण्डल पुष्पालंकृत है और पीठिका पर शंखद्वय हैं।

4 पद्मासनस्थ नेमिनाथ, पीठिका पर मध्य में एक पुरुष जिसके पृष्ठ पर पुष्पालंकरण है और उसके दोनों ओर एक–एक शंख, फिर दोनों ओर एक–एक जिन और तत्पश्चात् अपनी पिछली टागों पर खड़े और मूर्ति को अपने सिर पर रोके हुए दोनों कोनों पर एक–एक सिंह।

इनके अतिरिक्त वर्तमान दिगम्बर मंदिर में विराजमान पुरानी मूर्तियों का विवरण निम्न प्रकार है –

1 काले पत्थर की लगभग 3 फीट ऊंची महावीर की मूर्ति – जिनेन्द्र कमलासन पर विराजमान हैं। ऊपर छत्र के दोनों ओर माला लिये हुए गन्धर्वद्वय चित्रित हैं। तीर्थंकर के दोनों पार्श्व पर एक–एक चौरी–वाहक है। पीठिका पर सिंह है जिसके दोनों ओर एक–एक धर्म चक्र है। दोनों सिरों पर भी एक–एक सिंह है जो संभवतया सिंहासन के प्रतीक स्वरूप है।

2 नेमिनाथ के चरण।

3 करीब 1¼ फुट ऊंचे काले पत्थर के पट्ट पर अभिनन्दन की खड्गासन मूर्ति जिस पर बानर का लांछन है। यह पाल काल की है। बोध गया के बुद्ध मंदिर के शिखर पर जैसे अलंकरण इस मूर्ति के पट्ट के ऊर्ध्व भाग में पाये जाते हैं।

4 चन्द्रप्रभु की संगमरमर की मूर्ति जिस पर अर्द्धचन्द्र का चिन्ह है। इस पर सं. 1548 का लेख है।

5 काले पत्थर का एक चौबीसी पट्ट – सबसे ऊपर की पंक्ति में सात जिन हैं, उससे नीचे की पंक्ति में आठ और सबसे नीचे की पंक्ति में

आठ। पीठिका के मध्य में एक पद्मासनस्थ जिन हैं। इस प्रकार चौबीस जिन अंकित हैं। पीठिका पर जिनेन्द्र के बायीं ओर एक स्त्री आराम से करवट से लेटी हुई है। उसके पैरों के पास एक सेवक बैठा है जो मालूम होता है मानो उस स्त्री के पैर दबा रहा हो। स्त्री के नीचे एक पुरुष भी करवट से सामने की ओर मुंह किये लेटा है। जिनेन्द्र के दूसरी ओर एक पुरुष उकड़ूं बैठा है। उसके बाद एक स्त्री दो बच्चे लिए हुए है। सबसे कोने पर एक आकृति सारे पट्ट को थामे हुए सी चित्रित है।

6 महावीर की नं.1 पर वर्णित मूर्ति की भांति। पीठिका पर चक्रों के स्थान पर उपासक हैं। गुप्तकालीन लिपि में एक लेख भी है जो स्पष्ट नहीं है।

7 बिना लांछन के उपर्युक्त नं. 3 की शैली की मूर्ति।

8 काले पत्थर की पद्मासनस्थ नेमिनाथ की मूर्ति – पीठिका पर मध्य में चक्र है और इसके दोनों पार्श्व पर एक–एक शंख। मूर्ति के ऊपर छत्र है। पीछे अलंकृत प्रभामण्डल है। दोनों पार्श्व पर माला लिये हुए गन्धर्व और दो हाथों के मध्य डमरू है और तीर्थंकर के दोनों ओर एक–एक चौरी–वाहक है।

9 गर्भगृह के बाहर बरामदे में द्वार के बाईं ओर एक आले में एक देवी की मूर्ति है जो एक पैर नीचे लटकाये बैठी है। इसके बांये अंक में एक बच्चा है।

पुराने राजगृह के उत्तरी द्वार के बाहर सड़क से थोड़ा हटकर एक चबूतरे पर महावीर के चरण स्थापित हैं। वर्तमान राजगिर गांव में पुराना मंदिर है जो अब श्वेताम्बरों के अधिकार में है। इसके भंडार में कुछ प्राचीन मूर्तियां हैं जिनमें से एक का निर्देश ऊपर किया जा चुका है। इसी के पास पुरानी धर्मशाला भी है और वह भी श्वेताम्बरों के पास है। मध्यकालीन बारादरी का स्थान इसी धर्मशाला के अन्दर है और अब उसका भोजनशाला के रूप में उपयोग किया जाता है। एक श्वेताम्बर मंदिर इसी के निकट निर्मित हो रहा है।

दिगम्बरों की भी एक धर्मशाला है जिसमें एक मंदिर भी है। इसी के साथ लगे हुए विशाल बगीचे में एक और दिगम्बर मंदिर है जिसका निर्माण ई. 1925 में एक लाख रुपये की लागत से हुआ बताया जाता है।

गांव में स्व. पूरणचन्द्र नाहर का संग्रहालय भी दर्शनीय है। इसमें

पुरातात्विक सामग्री का अच्छा संग्रह है। सर्वाधिक उल्लेखनीय पूर्व उल्लिलिखित 33 पंक्तियों की काव्यमय प्रशस्ति है। इसमें सं. 1412 में विपुलगिरि पर वत्सराज और देवराज द्वारा ध्वजदण्ड मंडित पार्श्वनाथ के विशाल जिनालय की प्रतिष्ठा कराये जाने का उल्लेख है।

राजगिर जैनों का तीर्थराज रहा है। जिस काल में उसको अन्य धर्मावलम्बी प्रायः विस्मृत कर चुके थे, जैन अपनाये रहे और उसके वनाच्छादित पर्वतों के शिखरों पर मंदिर बनवाते रहे। मध्यकालीन जैन सहित्य में इसका पर्याप्त उल्लेख है और वहां पर स्थित मंदिरों का सुन्दर वर्णन है। उनसे ज्ञात होता है कि विपुल, उदय और वैभार पर स्थित ध्वस्त जिनालय कम से कम 1600 ई. तक अपने असली रूप में विद्यमान थे।

वहां पर प्राप्त पुरातात्विक सामग्री का जैनों को विशेष रूप से संरक्षण करना चाहिये। पहाड़ों पर मंदिरों तक जाने वाले रास्तों को भी साफ और पक्का करा देना चाहिये। महावीर के जीवन की सर्वप्रमुख घटना से सम्बन्धित इस स्थान के प्रति उनके अनुयायियों का इतना कर्तव्य तो है ही।

पाद–टिप्पणी

1 प्रो. योगेन्द्र मिश्र – ''भगवान महावीर की जन्म भूमि वैशाली'', **चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ,** पृ. 669–76। वर्तमान में वैशाली स्वयं जिला है , और उसके ही अन्तर्गत वासोकुण्ड स्थित है।

2 ''भगवान महावीर का बोधिस्थान'', वही, पृ. 649–51

3 ''भगवान महावीर की निर्वाणभूमि'', **वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ,** पृ. 211–14। वर्तमान में कुशीनगर जिला है और उसके अन्तर्गत उक्त स्थान को पावानगर कहा जाता है।

4 वर्तमान में यह नालन्दा जिले के अन्तर्गत है।

5 **Archaeological Survey of India Report, I**, p. 26

6 **Annual Report, Archaeological Survey of India, 1905-06,** pp.103-04.

✧ ✧ ✧

युक्त्यनुशासनम् एवं युक्त्यनुशासनालंकार कतिपय विशेष शोध बिन्दु

- डॉ. गोकुलचन्द्र जैन

समन्तभद्र कृत **युक्त्यनुशासनम्** संस्कृत में लिखित एक दार्शनिक स्तोत्र है। इसमें कृतिकार ने वर्द्धमान महावीर की स्तुति की है। जैन श्रमण परम्परा में **युक्त्यनुशासनम्** की रचना से संस्कृत स्तोत्र काव्य रचना का शुभारंभ हुआ। इसके पूर्व प्राकृत में **थुदि** काव्य की रचना की जाती रही। आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्राकृत गाथाओं में निबद्ध **थुदि** रचनाएं प्राकृत वाङ्मय के लिए एक अनुपम अवदान हैं।

युक्त्यनुशासनम् में 64 पद्य हैं। 62 पद्य संस्कृत के उपजाति छंद में हैं, तथा अन्तिम दो पद्य (63, 64) शिखरिणी छंद में हैं। संस्कृत में उपजाति स्तोत्र रचना के लिए लालित्यपूर्ण माना जाता है। इसीलिए समन्तभद्र ने **युक्त्यनुशासनम्** की रचना के लिए इस संस्कृत छंद को अपनाया।

समन्तभद्र ने **युक्त्यनुशासनम्** को भारतीय दर्शनों की समीक्षा और जैन दर्शन के सिद्धान्तों की प्रतिष्ठापना के लिए एक प्रशस्त माध्यम के रूप में निबद्ध किया है।[1] यद्यपि उन्होंने किसी दर्शन का नामोल्लेख नहीं किया तथापि भारतीय दर्शनों के प्रमुख सिद्धान्तों की समीक्षा से उन–उन दर्शनों की पहचान हो जाती है। **युक्त्युनुशासनम्** के टीकाकार *विद्यानन्द* ने समन्तभद्र के संकेतों की स्पष्ट पहचान करके सम्बद्ध दर्शन और उसके प्रणेता का उल्लेख किया है और उनकी विस्तृत समीक्षा की है।[2]

संस्कृत में समन्तभद्र द्वारा प्रवर्तित इस 'दार्शनिक स्तोत्र विधा' को अद्भुत सफलता मिली, जिसके प्रतिफल स्वरूप प्रायः सभी भारतीय दर्शनकारों ने इसको अपनाकर स्तोत्र लिखे। बौद्ध दर्शन में नागार्जुन ने **युक्तिषष्ठिका** नामक दार्शनिक काव्य की रचना की है। सांख्य दर्शन में ईश्वर कृष्ण ने **युक्तिवीथिका (सांख्यकारिका)** नामक दार्शनिक काव्य लिखा।

युक्त्यनुशासनम् नाम स्वयं में प्रमाणशास्त्र को अभिव्यक्त करता है। युक्तिपूर्वक किसी भी दार्शनिक सिद्धान्त की परीक्षा और समीक्षा करना ही "युक्त्यनुशासनम्" है। सांख्य–योग का नित्यत्वैकान्त, न्याय–वैशेषिक

का सामान्यैकान्त, बौद्धों का क्षणिकैकान्तवाद, मीमांसकों का पुरुषाद्वैतवाद, वेदान्त का अविद्यैकान्तवाद और चार्वाकों के भूतचैतन्यवाद तथा जैन दर्शन के अनेकान्तवाद व स्याद्वाद का निरूपण, समीक्षा और अनुशासन इस दार्शननिक स्तोत्र में निपुणता पूर्वक निरूपित हैं।[3]

जैन दार्शनिक परम्परा में दार्शनिक काव्य रचना की परम्परा ही चल पड़ी। सिद्धसेन और हेमचन्द्र जैसे प्रसिद्ध आचार्यो ने समन्तभद्र की तरह दार्शनिक काव्यों की रचना की। मलयगिरि ने समन्तभद्र को आद्यस्तुतिकार कहा है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि **युक्त्यनुशासनम्** को दार्शनिक स्तोत्र–काव्य विधा में अग्रणी स्थान प्राप्त है।

समन्तभद्र ने **युक्त्यनुशासनम्** के अतिरिक्त तीन और स्तोत्र काव्यों की रचना की है। इन सभी की प्रवृत्ति भारतीय प्रमाण शास्त्र से सम्बद्ध है। **देवागमस्तोत्रम** में आप्त की मीमांसा की गयी है, इसलिए इसका नाम **आप्तमीमांसा** है।[4] **स्वयंभूस्तोत्रम** में जैन परम्परा में मान्य चौबीस तीर्थकरों की स्तुति की गयी है।[5] इसमें भी प्रमाण शास्त्रीय विषयों का प्रतिपादन किया गया है। संस्कृत में निबद्ध इस स्तोत्र में इककीस तीर्थंकरों की स्तुति पांच–पांच पद्यों में की गयी है। संस्कृत काव्य शास्त्र में पांच पद्यों के समूह को कुलकम् कहा गया है। अरनाथ का स्तवन 20 पद्यों में किया गया है, इसे विंशतिका कहा जा सकता है। नेमिनाथ की स्तुति 10 पद्यों में की गयी है, यह एक दशक है। महावीर की स्तुति आठ पद्यों में स्तुति की गयी है, यह एक अष्टक है। इस तरह 21 कुलक, एक अष्टक, एक दशक तथा एक विंशतिका **स्वयंभूस्तोत्रम** में समाहित हैं; कुल पद्य 143 हैं। इसमें संस्कृत के विभिन्न छन्दों – वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, रथोद्धता, वसन्ततिलका, पथ्यावक्त्र, अनुष्टुप, वैतालीय, शिखरिणी, उद्गता और आर्यागीति का प्रयोग किया गया है।

स्तुतिविद्या या **जिनशतक** शब्दालंकार तथा चित्रालंकार में निबद्ध एक विशिष्ट स्तोत्र काव्य है। इसमें 24 जैन तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है।[6]

युक्त्यनुशासनालंकार आचार्य समन्तभद्र विरचित **युक्त्यनुशासनम्** नामक संस्कृत स्तोत्र ग्रन्थ पर संस्कृत गद्य में निबद्ध एक टीका ग्रन्थ है, किन्तु यह टीका मात्र मूल ग्रन्थ का अर्थबोध कराने वाली टीका नहीं है,

प्रत्युत मूल पद्य के अर्थबोध के साथ उसमें संकेत किये गये विषय का विशद विवेचन करने वाले स्वतन्त्र ग्रंथ के समकक्ष टीका ग्रन्थ है। टीकाकार ने इसे **युक्त्यनुशासनालंकार** कहा है। वास्तव में **युक्त्यनुशासनालंकार** समन्तभद्र के मूल स्तोत्र में प्रयुक्त अर्थगर्भ पदों को समग्रता के साथ अपनी सार्थक विवेचना से पूर्ण रूप से अलंकृत करने वाला व्याख्या ग्रन्थ है।[7]

टीकाकार का यह धर्म है कि मूल से अस्पृष्ट कोई अनावश्यक बात न कहे। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि मूल की कोई भी बात स्पष्ट होने से न रह जाये। इसी बात को ध्यान में रखकर महाकवि कालिदास के टीकाकार मल्लिनाथ ने कहा कि मैं ऐसी कोई बात नहीं कह रहा हूं जो मूल में न हो, और यह भी कि मैं जो भी कह रहा हूं उसमें अनपेक्षित कुछ भी नहीं है।[8]

टीका का एक विशेष गुण यह भी है कि मूल ग्रन्थ के भाव, भाषा और अर्थ को सहज सरल शब्दों में स्पष्ट करे। ऐसा न हो कि मूल से कठिन टीका को समझना हो जाये। इसीलिए कहा गया है कि टीका को "मघवामूल विडौजा टीका" नहीं होना चाहिए।

टीका ग्रन्थ के विषय में एक बात यह भी कही जाती है कि मूल की दुर्व्याख्या न की जाये। दुर्व्याख्या को विष कहा गया हैं जिससे मूर्च्छित होकर मूल ग्रन्थ का अर्थ अनर्थ में बदल जाता है।[9]

विद्यानन्द एक ऐसे समर्थ टीकाकार हैं कि उन्होंने मूल ग्रन्थ के एक–एक पद रूपी स्वर्णाभूषण पर टीका रूपी रत्न जड़ दिये हैं। इससे मूल ग्रन्थ **युक्त्यनुशासनम्** और अधिक आभामंडल युक्त हो गया है। इस कारण उनके द्वारा अपनी टीका को **युक्त्युनशासनालंकार** नाम देना पूर्णतया सार्थक हैं।[10]

विद्यानन्द अपनी टीका के मंगल पद्य में ही कहते हैं कि समन्तभद्र ने **युक्त्यनुशासनम्** में वस्तुतत्त्व को प्रमाण और नय के द्वारा निर्बाध रूप से निर्णीत कर दिया है, ऐसा स्तोत्र चिरकाल तक जिये।[11] एक अनुष्टुप पद्य में उन्होंने एक–एक पद का प्रयोग इस कुशलता के साथ किया है कि जैसे मणियों को पिरोकर एक हार–यष्टि का निर्माण किया हो। वस्तुतत्त्व का निर्णय प्रमाण और नय के द्वारा ही हो सकता है। पूरे ग्रन्थ का सार इन चार पदों में समाहित है –**"प्रमाण–नय–निर्णीत–वस्तुतत्त्वम्।**

श्लोक के उत्तरार्ध में ग्रन्थ कर्ता का नाम समन्तभद्र, ग्रन्थ की विधा स्तोत्र और ग्रन्थ का नाम युक्त्यनुशासनम् देकर जीयात् पद के द्वारा शिखर पर कलशारोहण जैसा कार्य किया गया है।

प्रमाणशास्त्रीय लघुकाव्य ग्रन्थ संस्कृत की सूत्र शैली में लिखे गये हों या पद्य में, उन सभी पर विशद, विमल और विस्तृत टीकाएं लिखी गयीं, जो स्वतन्त्र ग्रन्थ की तरह आदृत और अभिनन्दित हुईं। सिद्धसेन के **न्यायावतार** पर **न्यायावतारवार्तिक** लिखा गया। प्रायः सभी दार्शनिक लघुकाय ग्रन्थों पर विस्तृत टीकाएं लिखी गयीं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि **युक्त्यनुशासनालंकार** टीका ग्रन्थ होते हुए भी स्वतन्त्र ग्रन्थ की तरह महनीय एवं आदरणीय है।

पाद–टिप्पणी

1 दृष्टव्य, **युक्त्यनुशासनम् (उत्तरार्ध)** – सम्पादक पं. मूलचंद शास्त्री, प्रस्तावना पं. दरबारीलाल कोठिया

2 'आचार्य विद्यानन्द – **युक्त्यनुशासनालंकार,** सम्पादक डॉ. गोकुल चन्द्र जैन

3 दृष्टव्य, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का परिच्छेद तीन। प्रस्तुत लेख का शीर्षक ही शोध–प्रबन्ध का शीर्षक है और यह लेख उस शोध–प्रबन्ध का सार–संक्षेप है।

4 **देवागम** अपरनाम **आप्तमीमांसा,** सम्पादक और व्याख्याकार पं. जुगलकिशोर मुख्तार, वीर सेवा मन्दिर–ट्रस्ट, दिल्ली

5 **स्वयंभूस्तोत्र,** सम्पादक और अनुवादक पं. जुगल किशोर मुख्तार, वीर सेवा मन्दिर, सरसावा

6 **स्तुतिविद्या**, सम्पादक और अनुवादक पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, वीर सेवा मंदिर, सरसावा

7 श्रीमदवीर जिनेश्वरामलगुणस्तोत्रं परीक्षेक्षणैः
साक्षात्स्वामिसमन्तभद्रगुरुभिस्तत्वं समीक्ष्यारिवक्तम।
प्रोक्तं युक्त्युनशासनं विर्जायभिः स्याद्वादमार्गानुमै
र्विद्यानन्दबुधैरलंकृतमिदं श्री सत्य वाक्याधिपैः।।
– **युक्त्यनुशासनालंकार** (अन्तिम पद)

8 नामूलं लिख्यते किंचित् नानपेक्षित मुच्यते। – मल्लिनाथ

9 दुर्व्याख्याविषमूर्छिता।

10 विद्यानन्दबुधैरलंकृतमिदम।

— **युक्त्यनुशासनालंकार** (टीका समाहित सूचक पद्य)

11 प्रमाणनय निर्णीतवस्तुतस्वमबाधितम्।
जीयात् समन्तभद्रस्य स्तोत्रं युक्त्यनुशासनम्।।

— **युक्त्यनुशासनालंकार,** मंगलाचरण

(लेखक सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, के पूर्व विभागाध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम विभाग, तथा संकायाध्यक्ष, श्रमणविद्या संकाय, हैं।)

ई—1, रौ हाउस, शालीमार पाम्स, टिपिलयाना, इन्दौर—452016

✧✧✧

मेरे प्यारे महावीर

— श्री लूणकरण नाहर जैन

मेरे प्यारे महावीर, जग के तारक महावीर।
तेरे चरणों में वंदन, शत—शत बार महावीर।।
कुण्डलपुर के तुम हो प्यारे, सिद्धारथ के राजदुलारे।
भारत भूमि के सितारे, त्रिशला नंदन महावीर।।1 मेरे प्यारे महावीर
संयम पथ को था अपनाया, कष्टों को गले लगाया।
संगम देव के विजेता, धीर—वीर महावीर।।2 मेरे प्यारे महावीर ....
पशुओं पर करुणा आई, यज्ञों से बलि मिटायी।
अहिंसा धर्म के उपदेशक, युगवीर महावीर।।3 मेरे प्यारे महावीर
दलितों को गले लगाया, हरिकेशी को मुनि बनाया।
ऊंच नीच को मिटाया, दीनबन्धु महावीर।।4 मेरे प्यारे महावीर.......
चण्डकौशिक—सा विषधर तारा, तूने तारी चन्दनबाला।
अर्जुन माली के उद्धारक, करुणा सागर महावीर।।5 मेरे प्यारे.....
तेरी शिक्षा जीवन में लाएं, दुनियां का दर्द मिटाएं।
न्योछावर जीवन ये कर दें, तेरे कदमों पर महावीर।।6 मेरे प्यारे महावीर....
जनम दिन आज शुभ आया, जन—मन में हर्ष है छाया।
'नाहर' गीतांजलि अर्पित है, युगवंद्य महावीर।।7 मेरे प्यारे........

नाहर निकेतन, 514, राजेन्द्र नगर, लखनऊ—226004

✧✧✧

सहजानन्द वर्णी का संस्कृत साहित्य को योगदान

– डॉ. मोहन चन्द

श्री सहजानन्द वर्णी की गणना उन जैन दर्शनाचार्यो में की जाती है जिन्होंने न केवल जैन दर्शन को अपने युग में लोकोपयोगी बनाने हेतु प्रवचन ग्रंथों की रचना की, अपितु परम्परागत प्राचीन जटिल ग्रंथों पर विस्तृत व्याख्याएं लिखकर एक कुशल भाष्यकार होने का परिचय दिया। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी भाषा के 565 ग्रंथों की रचना करके जैन तत्त्व चिन्तन की विशेष अभिवृद्धि की है। **अष्टसहस्री, प्रमेयकमलमार्तण्ड, आप्तपरीक्षा, सप्तभंगीतरंगिणी** जैसे जैन दर्शन और तर्क शास्त्र के दुरुह ग्रंथों पर विवेचनात्मक भाष्य लिखकर वर्णी जी ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति को अर्जित किया था।

डॉ. हरीन्द्र भूषण जैन के शब्दों में – "हमने संस्कृत के महाकवि कालिदास के महनीय ग्रंथों के टीकाकार मल्लिनाथ की **संजीवनी टीका** आदि अनेक प्रसिद्ध टीकाओं का पारायण किया है किन्तु सहजानन्द जी की **सप्तदशांगी टीका** जैसी विस्तृत सर्वांग परिपूर्ण, सर्वरहस्यदायिनी टीका अभी तक नहीं देखी। इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ है कि किसी टीकाकार ने इतने अधिक दृष्टिकोणों से अपने प्रतिपाद्य की समीक्षा की हो। **समयसार** और **प्रवचनसार** की टीका–यात्रा के अनेकानेक पड़ाव है पर **सप्तदशांगी टीका** का स्थान सर्वोपरि है।"

शंकाओं और समाधानों के गहरे समुद्र में जाकर डुबकी लगाने वाले श्री सहजानन्द वर्णी को भारतीय तत्त्व चिन्तन की खूबियों और उसकी कमजोरियों का पूरा ज्ञान था। जैन शास्त्रों की मूलभावना को अपने वास्तविक रूप में प्रकट करने की उनमें जो विलक्षण प्रतिभा थी उसी ओर संकेत करते हुए जैन तर्क शास्त्र के महामनीषी पं. दलसुखभाई मालवणिया ने ठीक ही कहा है – "अत्यंत सहज विषय को अत्यंत सरल रूप में कहने की जो शक्ति मैंने सहजानन्द वर्णी में देखी वैसी अत्यंत दुर्लभ है। ऐसा कहने में मुझे कोई संकोच नही है। जिन ग्रन्थों को स्वामी जी ने पसन्द किया वे उच्च कोटि के हैं जिनका विवेचन करना हर किसी के लिए संभव

ही नहीं हैं। जब भविष्य में इन ग्रन्थों को पढ़ाने वाले दुर्लभ हों जायेगें, तब वर्णी जी के ये ग्रंथ ही प्राध्यापक का कार्य करेंगे।''

णाणसायर शोध पत्रिका की प्रबुद्ध सम्पादिका कुसुम जैन अपने ग्रन्थ **सहजानन्द वर्णी और उनकी संस्कृत रचनाएं** में लिखती हैं – ''भारतीय दर्शन के लिए यह गौरव का विषय है कि बीसवी शताब्दी में भी सहजानन्द वर्णी जैसे गम्भीर दार्शनिक हुए हैं, जिनकी सारस्वत साधना का उद्देश्य सत्य को दार्शनिक दांव–पेचों में उलझाना नहीं अपितु उसकी गुत्थियों को आत्मज्ञान द्वारा स्वयं सुलझाकर उसे आम जनता तक सरल और सहज भाषा में पहुंचाना भी था।''

श्री सहजानन्द वर्णी जी को बचपन से ही संस्कृत भाषा से विशेष लगाव था। शैशवावस्था में इन्होंने खेलकूद, मनोरंजन आदि से सम्बन्धित संस्कृत रचना **शोक शास्त्री** का निर्माण किया और गृहास्थावस्था की अनुभूतियों को मनोहर पद्यावलि में निबद्ध किया। इनके अतिरिक्त वर्णी जी की संस्कृत रचनाओं में **अध्यात्मसूत्र, सहजानन्द गीता, सहजसिद्ध सहस्रनाम स्तोत्र, तत्त्वसूत्र, सहजपरमात्मतत्त्व भक्ति, चित्संस्तवन, ब्रह्मचर्य विंशतिका** आदि रचनाएं सुन्दर, सुगम एवं सारगर्भित हैं। वर्णी जी की संस्कृत कृतियों में **सहजानन्द गीता** ऐसी सहज आनन्द प्रदान करने वाली रचना है जिसके फलस्वरूप इनके गुरु श्री गणेश प्रसाद वर्णी जी ने श्री मनोहर वर्णी जी को **सहजानन्द** का उपनाम प्रदान किया और विद्वत् जगत में इसी नाम से उनका समग्र कृतित्व विख्यात हुआ।

जैन साहित्य की सर्वप्रथम दार्शनिक रचना **तत्त्वार्थ सूत्र** की आचार्य उमास्वामि ने जिस संस्कृत सूत्र शैली में रचना की थी, लगभग उसी का अनुकरण करते हुए सहजानन्द वर्णी जी ने दस अध्यायों में तीन सौ छब्बीस सूत्रों द्वारा समग्र जैन तत्त्व चिन्तन को **अध्यात्मसूत्र** नामक ग्रंथ में सूत्रबद्ध किया है। संस्कृत के आचार्यों ने सूत्र का लक्षण दिया है– **अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् गूढ़ निर्णयः** अर्थात् सूत्र उसे कहते हैं जहां कम से कम शब्दों का प्रयोग करते हुए सन्देह रहित सारतत्त्व का गूढ़ विवेचन किया जाये। **अध्यात्मसूत्र** इस लक्षण की कसौटी पर सही उतरता है।

अध्यात्मसूत्र जैन साहित्य की एक अनूठी देन है। **तत्त्वार्थसूत्र** में 357 सूत्र हैं, वहीं **अध्यात्मसूत्र** में केवल 326 सूत्र हैं। दोनों रचनाओं

में न केवल अध्यायों की सूत्र–संरचना में भिन्नता है अपितु अध्यायों की विषय–वस्तु भी भिन्न–भिन्न है। **तत्त्वार्थसूत्र** में आदि के चार अध्यायों में अजीव, पांचवें में जीव, छठे और सातवें में आस्रव, आठवें में बंध, नौवें में संवर और निर्जरा तथा दसवें में मोक्ष तत्त्व की मीमांसा की गई है। **अध्यात्मसूत्र** में इन सात तत्त्वों की व्याख्या के साथ–साथ निश्चय–व्यवहार, उपादान–निमित्त, कर्तृ–कर्मत्व, गुणस्थान, विशुद्ध ज्ञान और संयम जैसे महत्वपूर्ण विषयों का भी समावेश किया गया है। इस प्रकार **अध्यात्मसूत्र** में नवीन प्रभाव का सृजन है।

आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि सहजानन्द वर्णी जी की कालजयी संस्कृत रचनाओं और उनके द्वारा प्राचीन संस्कृत साहित्य पर रचे गए भाष्यों और प्रवचनों से भारत–भारती का यश और सम्मान सर्वत्र प्रसारित होगा।

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

✧✧✧

जीवन का यथार्थ बोध

– श्री मदन मोहन वर्मा

थक कर बैठ जाने से कभी कुछ हाथ नहीं आता,
हौसला अगर हो तो सब फासले दूर हो जाते हैं।
कुछ क़र गुज़रने की यदि ठान ही ली है तुमने
मौसम का इंतज़ार क्यों, मन से बात पूछी जानी चाहिए।।

दुनिया में काम ऐसा कीजिए कि मुस्कराये ज़िन्दगी
कुछ ऐसा करके छोड़िए कि रह रह कर याद आये ज़िन्दगी।
याद रखिए इन्सान वही है सच्चा जो इन्सानियत को अपनाये,
वक्त पड़ने पर अपने तो अपने दूसरों को भी गले लगाये।।

प्यार इन्सान को इन्सान बना देता है,
यदि सच्चे मन से किया जाये तो।
ऐसा इन्सान समाज में आदर का पात्र होता है,
और भगवान की कृपा का भी हकदार हो जाता है।।

बी– 19, राजेन्द्र प्रसाद कॉलोनी, तानसेन मार्ग, ग्वालियर–474002

✧✧✧

कुछ प्रसिद्ध जैन आचार्य

— श्री स्वराज्य चन्द्र जैन

भगवान महावीर के पश्चात् कितने ही प्रसिद्ध आचार्य और ग्रन्थकार हुए हैं , जिन्होंने अपने सदाचार और सद्विचारों से न केवल जैन धर्म को अनुप्राणित किया अपितु अपनी अमर लेखनी के द्वारा भारतीय वाङ्मय को भी समृद्ध बनाया। सिद्धान्तचार्य पं. कैलाश चन्द्र शास्त्री द्वारा लिखित **जैन धर्म** नामक पुस्तक के आधार से कुछ ऐसे प्रसिद्ध आचार्यों और ग्रन्थकारों का परिचय संक्षेप में नीचे प्रस्तुत है।

गौतम गणधर भगवान महावीर के प्रधान गणधर (शिष्य) थे। इनका मूल नाम इन्द्रभूति था, जाति से ब्राह्मण थे। वेद–वेदांग में पारंगत थे। जब केवलज्ञान हो जाने पर भी भगवान महावीर की वाणी नहीं खिरी तो इन्द्र को इस बात की चिन्ता हुई। इसका कारण जानकर वह इन्द्रभूति के पास गया और युक्ति से उन्हें भगवान महावीर के समवसरण में ले आया। संशय दूर होते ही इन्द्रभूति ने प्रवज्या ले ली और भगवान के प्रधान गणधर हुए (557 ई.पू.)। भगवान का उपदेश सुनकर और उसे अवधारण करके उन्होंने **द्वादशांग श्रुत** की रचना की। जब कार्तिक कृष्ण अमावस्या को प्रातः भगवान महावीर का निर्वाण हुआ, उसी समय गौतम स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। इसके 12 वर्ष पश्चात् इन्हें भी निर्वाण पद प्राप्त हुआ।

भद्रबाहु (325 ई.पूर्व) अन्तिम श्रुतकेवली थे। इनके समय में मगध में 12 वर्ष का भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। तब वे साधुओं के बहुत बड़े संघ के साथ दक्षिण देश को चले गये। मैसूर प्रान्त के श्रवणबेलगोला स्थान पर भद्रबाहु स्वामी अपना अन्तिम समय जानकर ठहर गये और शेष संघ को आगे भेज दिया। वहां चन्द्रगिरि पर्वत की एक गुफा में भद्रबाहु स्वामी ने देहोत्सर्ग किया। यह गुफा भद्रबाहु की गुफा कहलाती है और इसमें उनके चरण अंकित हैं जो पूजे जाते हैं। भद्रबाहु के समय में संघ–भेद का बीजारोपण हुआ, अतः उनके बाद से श्वेताम्बरों और दिगम्बरों की आचार्य परम्परा भी जुदा–जुदा हो गयी।

विक्रम संवत् (57 ई. पू. में प्रारंभ) की दूसरी शती में धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबलि, गुणधर और कुन्दकुन्द, तीसरी शती में उमास्वामी और समन्तभद्र, तथा पांचवी शती में सिद्धसेन दिगम्बर परम्परा के प्रमुख आचार्य थे।

आचार्य धरसेन अंगो और पूर्वो के एक–देश के ज्ञाता थे और सौराष्ट्र देश के गिरनार पर्वत की गुफा में ध्यान करते थे। उन्हें इस बात की चिन्ता हुई कि उनके पश्चात् श्रुतज्ञान का लोप हो जायेगा। अतः उन्होंने महिमा नगरी के मुनि सम्मेलन को पत्र लिखा। वहां से दो मुनि उनके पास पहुंचे। आचार्य ने उनकी बुद्धि परीक्षा करके उन्हें सिद्धान्त की शिक्षा दी।

ये दो मुनि **पुष्पदन्त** और **भूतबलि** थे। आषाढ़ शुक्ला एकादशी को अध्ययन पूरा होते ही धरसेनाचार्य ने उन्हें विदा कर दिया। दोनों शिष्य वहां से चलकर अंकुलेश्वर आये और वहीं चातुर्मास किया। पुष्पदन्त मुनि अंकुलेश्वर से चलकर बनवास देश में आये। वहां पहुंचकर उन्होंने जिनपालित को दीक्षा दी और **वीसदिसूत्रों** की रचना करके उन्हें पढ़ाया। फिर उन्हें भूतबलि के पास भेज दिया। भूतबलि ने पुष्पदन्त की अल्पायु जानकर आगे की ग्रन्थ रचना की। इस तरह पुष्पदन्त और भूतबलि ने **षट्खण्डागम** को लिपिबद्ध करके ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन उसकी पूजा की। इसी से यह तिथि जैनों में **श्रुतपंचमी** के नाम से प्रसिद्ध हुई।

आचार्य गुणधर भी लगभग इसी समय में हुए। वे **ज्ञानप्रवाद** नामक पांचवे पूर्व के दसवें वस्तु अधिकार के अन्तर्गत कसायपाहुड़ रूपी श्रुत समुद्र के पारगामी थे। उन्होंने भी श्रुत का विनाश हो जाने के भय से **कसायपाहुड़** नाम का महत्व पूर्ण सिद्धान्त ग्रन्थ प्राकृत गाथाओं में निबद्ध किया।

आचार्य कुन्दकुन्द जैन धर्म के महान प्रभावक आचार्य थे। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि विदेह क्षेत्र में जाकर सीमंधर स्वामी की दिव्यध्वनि सुनने का सौभाग्य इन्हें प्राप्त हुआ था। इनका प्रथम नाम पद्मनन्दि था। कोण्डकुन्दपुर के रहने वाले होने से बाद में वे **कोण्डकुन्दाचार्य** के नाम से प्रसिद्ध हुए। उसी का श्रुति–मधुर रूप **कुन्दकुन्दाचार्य** बन गया। इनके **प्रवचनसार, पंचास्तिकाय** और **समयसार** नाम के ग्रन्थ अति प्रसिद्ध हैं जो नाटकत्रयी कहलाते हैं। इनके सिवाय इन्होंने अनेक प्राभृतों की रचना की है जिनमें आठ प्राभृत उपलब्ध हैं। **बोधप्राभृत** के अन्त की एक गाथा में इन्होंनें अपने को श्रुतकेवली भद्रबाहु का शिष्य बतलाया है। श्रवणबेलगोला के शिलालेखों में इनकी बड़ी कीर्ति बतलायी गयी है।

उमास्वामी आचार्य कुन्द–कुन्द के शिष्य थे। इन्होंने जैन सिद्धान्त को संस्कृत सूत्रों में निबद्ध करके **तत्त्वार्थसूत्र** नामक सूत्र ग्रन्थ की रचना की। इनको गृद्धपिच्छाचार्य भी कहते थे। श्रवणबेलगोला के शिलालेख सं. 108 में लिखा है कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पवित्र वंश में उमास्वामी मुनि हुए जो सम्पूर्ण पदार्थों के जानने वाले थे, मुनियों में श्रेष्ठ थे। उन्होंने जिनदेव प्रणीत समस्त शास्त्रों के अर्थ को सूत्र रूप में निबद्ध किया। वे प्राणियों की रक्षा में बड़े सावधान थे। एक बार उन्होंने मयूर पिच्छी न होने पर गृद्ध के परों को पिच्छी के रूप में धारण किया था, तभी से उनको गृद्धपिच्छाचार्य कहा जाने लगा।

जैन समाज के प्रभावक आचार्यो में **स्वामी समन्तभद्र** का स्थान बहुत ऊंचा है। इन्हें जैन शासन का प्रणेता और भावी तीर्थंकर तक बतलाया गया है। अकलंकदेव ने **अष्टशती** में, विद्यानन्द ने **अष्टसहस्री** में, आचार्य जिनसेन ने **आदिपुराण** में, जिनसेन सूरि ने **हरिवंशपुराण** में, वादिराजसूरि ने न्याय **विनिश्चय–विवरण** और **पार्श्वनाथ चरित** में, वीरनन्दि ने **चन्द्रप्रभचरित** में, हस्तिमल्ल ने **विक्रान्तकौरव नाटक** में तथा अन्य अनेक ग्रन्थकारों ने भी अपने–अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में इनका बहुत ही आदरपूर्वक स्मरण किया है। मुनि जीवन में इन्हें भस्मक व्याधि हो गयी। जो खाते थे वह तत्काल जीर्ण हो जाता था। उसे दूर करने के लिए इन्हें कांची या काशी के राजकीय शिवालय में पुजारी बनना पड़ा और वहां देवार्पित नैवेद्य का भक्षण करके उन्होंने अपना रोग दूर किया। कलई खुलने पर **स्वयंभूस्तोत्र** रचकर उन्होंने जैन शासन का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रकट किया। इनके रचे हुए **आप्तमीमांसा, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, जिनस्तुतिशतक तथा रत्नकरण्ड** नामक ग्रन्थ उपलबध हैं। ये प्रखर तार्किक और कुशल वादी थे। अनेक देशों में घूम–घूमकर इन्होंने विपक्षियों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था।

आचार्य उमास्वामी की तरह **सिद्धसेन** की मान्यता भी दोनों सम्प्रदायों में पायी जाती है। दिगम्बर सम्प्रदाय के आचार्य जिनसेन प्रथम व द्वितीय ने बहुत ही आदर के साथ उनका स्मरण किया है और उनकी सूक्तियों को भगवान ऋषभदेव की सूक्तियों के समकक्ष बतलाया है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "दिवाकर" विशेषण के साथ इनकी प्रसिद्धी है।

प्राकृत गाथाओं में निबद्ध इनका **सन्मतितर्क** ग्रन्थ अति प्रसिद्ध है। **न्यायावतार** तथा **द्वात्रिंशतिकाय** संस्कृत में हैं। सभी ग्रन्थ गहन दार्शनिक चर्चाओं से परिपूर्ण हैं।

ईस्वी सन् की 5वीं सती से 11वीं शती पर्यन्त हुये आचार्यों में पूज्यपाद देवनन्दि, पात्रकेसरी, अकलंक, विद्यानन्दि, माणिक्यनन्दि, अनन्तवीर्य, वीरसेन, जिनसेन, प्रभाचन्द्र और वादिराज उल्लेखनीय हैं।

श्रवणबेलगोला के एक शिलालेख में ईस्वी सन् की 5वीं शती में हुये **पूज्यपाद देवनन्दि** के बारे में उल्लेख है कि इनका पहला नाम "देवनन्दि" था परन्तु बुद्धि की महत्ता के कारण वे "जिनेन्द्र बुद्धि" कहलाये और देवों ने उनके चरणों की पूजा की, इसलिए उनका नाम "पूज्यपाद" हुआ। इनका संक्षिप्त नाम 'देव' भी था। आचार्य जिनसेन ने **आदिपुराण** में और वादिराजसूरि ने **पार्श्वनाथचरित्र** में इन्हें इसी संक्षिप्त नाम से स्मरण किया है। महाकवि धनञ्जय ने अपनी **नाममाला** में पूज्यपाद के व्याकरण को **अपश्चिम रत्नत्रय** में गिनाया है। **जैनेन्द्रव्याकरण** जैनों का पहला संस्कृत व्याकरण है। इसके सूत्र बहुत ही संक्षिप्त हैं। संस्कृत में इनके चार ग्रन्थ और उपलब्ध हैं – **सर्वार्थसिद्धि, समाधितंत्र, इष्टोपदेश** और **दशभक्ति**। गंगवंशीय राजा दुर्विनीत इनका शिष्य था, उसका राज्य काल ई. सन् 452 से 512 तक माना जाता है।

पात्रकेसरी ईसा की छठी शती में हुये। इन्हें 'पात्रस्वामी' भी कहते हैं। इन्होंने बौद्धों के त्रैरूप्यहेतुवाद का खण्डन करने के लिए **त्रिलक्षण –कदर्थन** नामक शास्त्र रचा था जो अनुपलब्ध है। शांतरक्षित ने अपने **तत्त्वसंग्रह** में पात्रस्वामी के मत की आलोचना करते हुये कुछ कारिकांए पूर्वपक्ष के रूप में दी हैं। इनका निम्न श्लोक बहुत प्रसिद्ध है –

अन्यथानुमपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुमपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।।

वादिराजसूरि और अनन्तवीर्य ने लिखा है कि बौद्धों के त्रिलक्षण का खण्डन करने के लिए पद्मावतीदेवी ने भगवान सीमन्धरस्वामी के समवसरण में जाकर उनके गणधर के प्रसाद से इस श्लोक को प्राप्त करके पात्रकेसरी को दिया था। श्रवणबेलगोला के शिलालेख नं. 54 में भी ऐसा उल्लेख है।

अकलंक ई. 620 से 680 में हुये। वे जैन न्याय के प्रतिष्ठाता थे, तथा प्रकाण्ड पंडित, धुरन्धर शास्त्रार्थी और उत्कृष्ट विचारक थे। जैन

न्याय को इन्होंने जो रूप दिया उसे ही उत्तरकालीन जैन ग्रन्थकारों ने अपनाया। बौद्धों के साथ इनका खूब संघर्ष रहा। स्वामी समन्तभद्र के यह सुयोग्य उत्तराधिकारी थे। इन्होंने **आप्तमीमांसा** ग्रन्थ पर **अष्टशती** नामक भाष्य की रचना की। इनकी रचनायें दुरूह और गम्भीर हैं। अब तक इनके **अष्टशती, प्रमाणसंग्रह न्यायविनिश्चय, लघीयस्त्रय, सिद्धि विनिश्चय** और **तत्वार्थराजवार्तिक** नाम के ग्रन्थ प्रकाश में आ चुके हैं।

विद्यानन्दि ई. नौवीं शती में हुये। वे अपने समय के बहुत ही समर्थ विद्वान थे। इन्होंने अकलंक देव की **अष्टशती** पर **अष्टसहस्री** नाम का महान ग्रन्थ लिखा है जिसे समझने में अच्छे–अच्छे विद्वानों को कष्टसहस्री का अनुभव होता है। वे सभी दर्शनों के पारगामी विद्वान थे। इन्होंने **आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, तत्वार्थश्लोकवार्तिक** और **युक्त्यनुशास्त्र टीका** नाम के प्रौढ़ दार्शनिक ग्रन्थ रचे हैं।

माणिक्यनन्दि ने उसी शती में अकलंकदेव के वचनों का अवगाहन करके **परीक्षामुख** नाम के सूत्र ग्रन्थ की रचना की जिसमें प्रमाण और प्रभाणाभास का सूत्रबद्ध विवेचन किया गया है। सूत्र संक्षिप्त स्पष्ट और सरस हैं।

अनन्तवीर्य भी ई. की नौवीं शती में हुये। वे अकलंक न्याय के प्रकाण्ड पंडित थे। इन्होंने उनके **सिद्धिविनिश्चय** ग्रंथ पर बहुत ही विद्वतापूर्ण टीका लिखी है। वादिराज ने अपने न्याय **विनिश्चयविवरण** में इनकी बहुत प्रशंसा की है और लिखा है कि इनके वचनामृत की वृष्टि से जगत को खा जाने वाली शून्यवाद रूपी अग्नि शांत हो गयी।

आचार्य वीरसेन (ई. 790–825)प्रसिद्ध सिद्धान्त ग्रन्थ **षट्खण्डागम** और **कसायपाहुड** के मर्मज्ञ थे। उन्होंने प्रथम ग्रन्थ पर 62 हजार श्लोक प्रमाण प्राकृत–संस्कृत मिश्रित **धवला** नाम की टीका लिखी है। **कसायपाहुड़** पर 20 हजार श्लोक प्रमाण टीका लिख कर वे स्वर्गवासी हो गये। ये टीकाएं जैन सिद्धान्त की गहन चर्चाओं से परिपूर्ण हैं। **धवला** की प्रशास्ति में उन्हें वैयाकरणों का आधिपति, तार्किक–चक्रवर्ती और "प्रवादी रूपी गजों के लिए सिंह" समान बतलाया गया है।

आचार्य जिनसेन (ई. 800–880) वीरसेन के शिष्य थे। उन्होंने गुरू के स्वर्गवासी हो जाने पर **जयधवला** टीका को पूरा किया। उन्होंने अपने को "अविद्ध–कर्ण" बतलाया है जिससे प्रतीत होता है कि वे बालवय

में ही दीक्षित हो गये थे। उन्होंने अपने नवयौवन काल में ही **कालिदास** के **मेघदूत** को लेकर **पार्श्वाभ्युदय** नाम का सुन्दर काव्य रचा था। तिरेसठ शलाका पुरुषों का चरित्र लिखने की इच्छा से उन्होंने **महापुराण** लिखना प्रारम्भ किया किन्तु बीच में ही उनका स्वर्गवास हो गया और उसे उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने पूर्ण किया। राष्ट्रकूट सम्राट अमोघवर्ष उनका शिष्य और भक्त था।

आचार्य प्रभाचन्द्र (ई. सन् की 11वीं शती) एक बहुश्रुत दार्शनिक विद्वान थे। सभी दर्शनों के प्रायः सभी मौलिक ग्रन्थों का उन्होंने अभ्यास किया था। यह बात उनके रचे हुए **न्याय–कुमुद–चन्द्र** और **प्रमेय–कमल–मार्तण्ड** नामक दार्शनिक ग्रन्थों के अवलोकन से स्पष्ट है। पहला ग्रन्थ अकलंक देव के **लघीयस्त्रय** का व्याख्यान है और दूसरा आचार्य माणिक्यनन्दि के **परीक्षामुख** नामक सूत्र ग्रन्थ का। इनके गुरु का नाम पद्मनन्दि सैद्धान्तिक था।

तार्किक वदिराज (ई. सन् 11वी शती) उच्च कोटि के कवि भी थे। **षट्तर्कषण्मुख स्याद्वादविद्यापति** और **जगदेकमल्लवादी** उनकी उपाधियां थी। नगर ताल्लुका के शिलालेख नं. 34 मे बताया गया है कि वे सभा में अकलंक थे, प्रतिपादन करने में धर्मकीर्ति थे, बोलने में बृहस्पति थे और नयायशास्त्र में अक्षपाद थे। उन्होंने अकलंकदेव के **न्यायविनिश्चय** पर 20 हजार श्लोक प्रमाण विद्वत्तापूर्ण विवरण लिखा और शक सं. 947 (ई. सन् 1025) में **पार्श्वनाथ चरित्र** रचा जो बहुत ही सरस प्रौढ़ रचना है। इनके गुरू का नाम मतिसागर था।

(श्री स्वराज्य चन्द्र जैन सेवा–निवृत्त अधिशासी अभियन्ता हैं। सेवानिवृत्ति के बाद उनकी जिज्ञासा जैन धर्म और साहित्य के प्रति हुई। पं. कैलाशचन्द्र जी के **जैन धर्म** ने उन्हें प्रेरणा दी और उसी के फलस्वरूप उस पुस्तक के आधार से उन्होंने यह लेख लिखा। हमारी भावना है कि जैन धर्म के प्रति उनकी जिज्ञासा में वृद्धि हो। –सम्पादक)

22/601, एम.आई.जी. (लवकुश नगर के पास), इन्दिरा नगर, लखनऊ–226016

✧✧✧

एक प्रबुद्ध श्राविका की दृष्टि

जैन धर्म का अर्थ–बोध

– सौ. गीता जैन

अधिकांश लोगों की यह धारणा रही है कि जैन धर्म के संस्थापक भगवान महावीर हैं जब कि भगवान महावीर से पहले 23 तीर्थंकर हो चुके हैं। जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव थे। आदि–तीर्थंकर ऋषभदेव के साक्ष्य वेदों में उपलब्ध हैं। सर्वाधिक प्राचीन वेद **ऋग्वेद** है, इसमें 141 स्थानों पर ऋषभदेव का उल्लेख प्राप्त होता है। **अथर्ववेद** के पन्द्रहवें खण्ड, "व्रात्य खंड", का अध्ययन करते समय तो ऐसा आभास होता है कि भगवान ऋषभदेव का चरित्र पढ़ रहे हों।

सन् 1920 से पहले इतिहासविदों की यह धारणा रही कि वैदिक सभ्यता ही भारत की सबसे प्राचीन सभ्यता थी परन्तु सन् 1921–22 में भारत के दो पुरातत्वविदों श्री रखालदास बनर्जी एवं श्री दयाराम साहनी ने हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो के प्राचीन स्थलों की खुदाई करके इस धारणा को भ्रान्तिपूर्ण प्रमाणित कर दिया कि वैदिक सभ्यता ही भारत की सबसे प्राचीन सभ्यता है। अधिकांश इतिहासविद् मानते हैं कि हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो में मिले अवशेष श्रमण संस्कृति के अवशेष हैं। श्रमण संस्कृति जैन संस्कृति को ही कहा जाता है। इस प्रकार यह बात सिद्ध है कि जैन धर्म प्राचीन है।

जैन धर्म मुख्यतः अकर्तावादी दर्शन है। इसके अनुसार न तो इस जगत को कोई बनाने वाला है और न ही इसे कोई नष्ट कर सकता है। ये संसार अनादिकाल से है और अनन्तकाल तक रहने वाला है। इसका स्वरूप बदलता रहता है, यह नष्ट कभी नहीं होता।

जैन दर्शन कर्म प्रधान दर्शन है – जो जैसा करता है उसको अपने किये का परिणाम अवश्य भुगतना पड़ता है। कोई पाप करे और उसके परिणाम से बच जाये, ये तीनकाल में भी सम्भव नहीं है। तुलसीदास जी ने भी **रामचरितमानस** में लिखा है – **कर्म प्रधान विश्व रचि राखा,**
जो जस करहि सो तस फल चाखा।।

जैनाचार्य अमितगति ने **सामायिक पाठ** में कुछ इसप्रकार भाव व्यक्त किये हैं–

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ फल निश्चय ही वे देते।
करे स्वयं और देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते।।

भगवान महावीर ने जिस धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया, उसका स्वरूप सर्वोदय है। **सर्वोदय** माने सबका उदय, सबका कल्याण। जैन धर्म में वर्तमान समय में विश्व में व्याप्त समस्त समस्याओं का अन्त करने की सामर्थ्य विद्यमान है, साथ ही इसमें सभी का कल्याण करने का चिन्तन निहित है। इस धर्म में न जाति की सीमा है, न क्षेत्र की और न काल की। यह तो प्रत्येक आत्मा को मूल में समान स्वभाव एवं समान धर्म वाला मानता है। यह जन्मना किसी जाति–भेद या अधिकार–भेद को नहीं मानता। यह अनन्त जड़ पदार्थों का भी स्वतन्त्र अस्तित्व मानता है। किसी प्राणी का किसी दूसरे प्राणी द्वारा शोषण अन्याय है जो इन पंक्तियों के माध्यम से दृष्टव्य है –

नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूं।
पर–धन–वनिता पर न लुभाऊं, सन्तोषामृत पिया करूं।।

जैन दर्शन सह–अस्तित्व की भावना में विश्वास रखने वाला दर्शन है जिसका अभिप्राय है विरोधी विचार रखने वाले व्यक्ति का सम्मान करना। वर्तमान में यदि लोकतन्त्र को सम्पन्न एवं खुशहाल बनाना है तो सह–अस्तित्व के सिद्धान्त को जीवन में अपनाना होगा। इसका संकेत आचार्य अमितिगति ने इस प्रकार किया है –

सत्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विद्धातु देव।।

अर्थात् सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव हो, गुणीजनों के साथ में आनन्द प्राप्त हो, दुखी जीवों के प्रति करूणाभाव हो, और विपरीत विचार वालों के प्रति समता भाव हो – यह चिन्तन प्रत्येक मानव का हो तो उसका चित्त सरलता से निर्मल रह सकता है एवं विश्व की गला काट प्रतिस्पर्धा में भी शान्ति एवं प्रेम से रहा जा सकता है।

निष्कर्ष यह है कि ऐसे उदात्त जैन दर्शन को व्यक्ति अपने जीवन में अपनाये तो व्यक्ति सुखी होगा, समाज अपनाये तो समाज सुखी होगा और देश अपनाये तो देश समृद्ध एवं सुखी होगा, तब हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा देखा गया रामराज्य का सपना एवं भारतीय संविधान में निहित लोक कल्याणकारी राज्य का आदर्श फलीभूत हो सकेगा।

एल–649, इन्द्रलोक कॉलोनी, कृष्णा नगर, लखनऊ–226023

✧✧✧

संस्मरणात्मक शब्द–चित्र

चाची जी

– श्री कैलाश नारायण टंडन

लगभग 50 वर्ष पहले की बात है। जिस मोहल्ले में हम रहते थे वहां एक महिला की छवि अभी भी स्मृतिपटल पर है। मोहल्ले के सभी व्यक्ति, बच्चों से लेकर जवान लड़के–लड़कियों तक उन्हें **चाची जी** कहा करते थे। उनका असली नाम तो रूपा था, पर उनके पतिदेव को छोड़कर अन्य कोई भी उनके इस नाम से परिचित न था। रंग तो उनका साधारण था, परन्तु उनका शरीर इतना भीमकाय था कि देखकर डर लगता था। अधपके घुंघराले बाल, बड़ी और चपटी नाक, कौड़ी ऐसी आंखे और घड़ा ऐसा पेट उनकी शारीरिक विशेषताएं थीं। आवाज तो उनकी इतनी तेज थी कि मोहल्ले भर में सुनाई पड़ती थी। जिस समय वे बच्चों को डांटतीं तो बच्चे मारे डर के मूत मारते। शारीरिक शक्ति भी उनकी गजब की थी। बच्चे उनसे दूर रहा करते थे।

चाची जी के चार लड़कियां थीं, दो की उम्र करीब 14 और 16 साल की थी और अन्य दो की 5 और 7 साल की। चाची जी पुराने विचारों वाली थीं। वे फैशन, पढ़ाई, सिनेमा आदि सभी के सख्त खिलाफ थीं। स्त्री शिक्षा की वे कट्टर विरोधी थीं। यद्यपि उन्होंने अपने पतिदेव के आग्रह पर अपनी बड़ी बेटी को पढ़ने के लिये स्कूल भेजा, परन्तु हृदय से उन्हें यह पसन्द नहीं था। उनका कहना था कि लड़कियों को पढ़ाने की कोई आवश्यकता नही है। लड़कियों को तो घर–गिरस्ती का काम जानना चाहिये। पढ़–लिखकर नौकरी करना लड़कों का काम है। अगर लड़कियां दफ्तरों में बाबू बनकर बैठ जायेगीं, तो क्या लड़के घर पर चूल्हा फूकेंगे? पढ़ाने ने तो सब चौपट कर रखा है। उदाहरण दे, वे बतातीं कि उनके पड़ोसी श्रीवास्तव साहब की लड़की बी.ए. की डिग्री प्राप्त कर घमण्ड से न घर का कोई काम करती है और न किसी से तहजीब से बात करती है। श्रीवास्तव साहब ने उसके लिये कई वर चुने परन्तु उन्हें इण्टरव्यू के पश्चात् निराश हो लौट जाना पड़ा। यह सब बातें चाची जी को कतई पसन्द नहीं थीं। उन्हें इन सब बातों से सख्त नफ़रत थी। इसीलिये चाची

जी ने अपनी बड़ी बेटी का पढ़ना छुड़ा दिया था और उसे घर–गिरस्ती के काम में लगा दिया था।

वे दिन भर काम करने की आदी थीं। खाली बैठना उन्हें कतई पसन्द नहीं था। न तो वे खुद खाली बैठतीं और न किसी को खाली बैठे हुए देखना पसन्द करतीं। वे चाहती थीं कि उनकी लड़कियां भी गृह–कार्य में उतनी ही निपुण और दक्ष हो जायें, जितनी कि वे स्वयं हैं। उनकी लड़कियां तभी काम करतीं, जब उन्हें डांट खाने का डर होता। निगाह के सामने जब तक वे होतीं तभी तक काम करतीं, जहां निगाह चूकी कि काम बन्द हो गया। कभी–कभी वे इस सिलसिले में लड़कियों की मरम्मत भी कर देतीं। समझाने और डांटने का संयुक्त कार्यक्रम उच्च स्वर में इतनी देर तक चलता कि आस–पास के लोग ऊब जाते।

जरा–सी बात में ही वे उत्तेजित हो जाया करती थीं। उत्तेजित होने पर उनके क्रोध की मात्रा भी कुछ कम न होती थी, पर अधिक क्रोधित हो जाने वाले अवसर कम आया करते थे। किसी से असन्तुष्ट हो जाने पर अथवा गुस्सा हो जाने पर देहाती गालियों की बौछार करना उनके लिये स्वाभाविक ही था। वे जिससे नाराज होतीं उस पर वे ऐसी व्यंग्यपूर्ण शैली में गालियों का प्रहार करतीं कि वह तिलमिला जाता। उनका प्रतिवाद करने का किसी में साहस न था। जरा–सी बात पर लेक्चर देने की उनकी पुरानी आदत थी। उस लेक्चर में घटना से सम्बन्धित बातें तो नाम मात्र को ही होतीं, किन्तु आत्मप्रशंसा और आदर्शात्मकता की बहार रहती थी।

लड़कियों से काम कराने की उनकी पुरानी आदत थी। जरा–जरा से काम के लिये भी लड़कियों को बुलाया करती थीं। यहां तक कि इतवार को वे अपने पतिदेव से भी काम कराना न भूलती थीं। उनके पतिदेव बिलकुल सीधे–साधे आदमी थे। वे हमेशा श्रीमती जी की आज्ञा का पालन करने के लिये हाथ जोड़े खड़े रहते थे। लड़कियों को जहां किसी काम के करने में देर हुई बस बरस पड़ीं। दस बीस गालियां बिना दिये उनका क्रोध शान्त ही न होता। खसम की नानी, अग्मादाई, चुड़ैल, डाइन आदि शुभ नामों से नित्य ही वे अपनी लड़कियों की पूजा करती थीं।

चाची जी के गालियां देने पर लड़कियां न तो बुरा मानतीं और न नाराज होतीं वरन् एक दूसरे को देख–देखकर हंसती। चाची जी के सामने मुंह करके हंसने की किसी की भी हिम्मत न पड़ती। लड़कियां

मशीन की तरह हर काम करतीं। कभी किसी लड़की के हाथ से घी का बर्तन गिरकर टूट जाता या कभी किसी के हाथ से आटे की थाली गिर पड़ती तो वे हाथ में चिमटा, बेलन आदि लेकर बकती हुई घटना स्थल पर पहुंच जातीं और गालियों की बौछार करती हुई किसी–न–किसी की मरम्मत कर देतीं। चाहे कुसूर किसी का हो बिना विचार किये जो भी सामने पड़ता उसे वे इनाम दे ही डालतीं, "हरामजादी कहीं की, पराये घर जाकर कैसे तेरा गुजारा होगा'?", यह रटे हुये वाक्य सदैव उनके मुंह से निकला करते। जब वे थक जातीं, तो अपनी कथा में दूसरों को शरीक करने के लिए वे अपनी दास्तान रो–रोकर सुनाने लगतीं। चाची जी को रोता देखकर लड़कियां झूठ–मूठ आंसू पोछने लगतीं और मुड़–मुड़ कर एक दूसरे की तरफ देखकर हंसती।

जिस दिन ऐसी घटना होती उस दिन फिर वे चौके में नहीं जातीं। पतिदेव के आते ही वे अपना दुखड़ा उनके आगे रोने लगतीं। आंसू बहा–बहाकर वे अपनी दर्दनाक कहानी उनके सामने पेश करतीं। यद्यपि पतिदेव उनकी इस आदत से तंग आ गये थे, पर डर के कारण वे खुले रूप से न तो विरोध ही कर सकते थे और न अपनी उदासीनता ही प्रकट कर सकते थे। ऐसी स्थिति में उनकी मुख–मुद्रा वास्तव में देखने वाली होती थी।

पतिदेव से शिकायत करने के बहाने वे जिस सहानुभूति की इच्छा करती थीं, वह उन्हें प्राप्त न हो पाती। वे इस कारण पतिदेव से कुछ रूठ–सी जाया करती थीं। सुबह से शाम तक आफिस में काम करने के बाद पतिदेव को स्वयं सहानुभूति की आवश्यकता होती थी।

अपना दुखड़ा रोना उनकी पुरानी आदत थी। जब कभी उन्हें समय मिलता वे इसका सदुपयोग अवश्य करतीं। पतिदेव के चरित्र का आलोचनात्मक परिचय देते हुए वे अपनी प्रशंसा के पुल बांधकर पतिदेव की शिकायत करतीं। उनके कहने का ढंग भी इतना मर्मस्पर्शी होता कि पत्थर का दिल भी पिघल जाता।

भाषण प्रतियोगिता में अद्वितीय होने के कारण चाची जी को **आल इण्डिया रेडियो** की उपाधि दी गयी थी। जिस प्रकार से रेडियो के प्रोग्राम एक निर्धारित समय पर हुआ करते हैं, उसी प्रकार उनकी वार्ता भी एक निश्चित समय पर करीब–करीब रोज ही प्रसारित हुआ करती थी। अनायास ही किसी विषय का प्रारम्भ कर देना उनकी विशेषता थी।

उनका बात करने का ढंग भी अजीब था। अपनी सभी बातें वे इस ढंग से कहतीं मानों सच ही कह रही हों। बातों की सत्यता प्रमाणित करने के लिए एक के बाद दूसरा प्रमाण प्रस्तुत करती जातीं। उनके सामने कोई अपनी बड़ाई करे यह उन्हें सहन न था, जब कि दुनिया भर की बेकार बातों, गप्पों और झूठी बातों से दूसरों को परेशान करना वे अपना अधिकार समझती थीं। दूसरे की बात पर जब उन्हें विश्वास नहीं होता तो झट कसम खाने के लिये कहतीं और अगर कोई कसम खाने से इनकार करता तो बस लत्ता ले डालतीं।

उन्हें अधिकतर दूसरों से ईर्ष्या रहती थी। ईर्ष्या को वे घृणा द्वारा भी व्यक्त किया करती थीं। उनके कोसने का ढंग काफी विचित्र था। वे खानदान तक को भला–बुरा कहने में न चूकतीं। ईर्ष्या और द्वेष के भाव उनके चेहरे पर स्पष्ट ही साकार हो जाते थे। जली–कटी व्यंग्यपूर्ण बातें करना उनका स्वभाव था। जब तक उन्हें दूसरी ओर से उत्तर मिलता, वे बराबर अपने तीर चलाती रहतीं, परन्तु ज्यों ही दूसरी ओर के तीर खतम हो जाते, वे भी थोड़ी देर बाद शान्त हो जातीं। वे अपनी विजय पर मन–ही–मन मुस्करातीं और हर्ष की रेखाएं शीघ्र ही उनके चेहरे पर स्पष्ट हो जातीं।

उनके चुप हो जाने के बाद वातावरण में एक अजीब नीरसता छा जाती। वातावरण में नीरसता आने पर लोग उन्हें किसी–न–किसी प्रकार छेड़ने की चेष्टा करते। किसी साधारण बात पर उत्तेजित हो जाना उनके लिये स्वाभाविक था और उसका पूरा आनन्द पड़ोसियों को प्राप्त होता था। साधारण–सी बात का खण्डन करने के लिये वे एक घण्टे तक भाषण देतीं। यद्यपि ज्यादा बोलते–बोलते उनका दम फूल जाता, परन्तु वे अपनी आदत से बाज़ न आती थीं। डाक्टर ने कई बार उन्हें कम बोलने का परामर्श दिया था, परन्तु वे आदत से लाचार थीं। वे क्षयग्रस्त थीं और रोग के भयंकर परिणाम से परिचित होते हुए भी अपनी आदत पर काबू पाने में अपने को असफल पा रही थीं। अवसर मिलने पर अब भी छोटे–मोटे भाषण दे डालतीं। लोग उन्हें काफी समझाते, पर उन पर कोई असर नहीं पड़ता। अब लम्बे भाषण देने की शक्ति उनमें नहीं थी, फिर भी जितनी शक्ति उनके शरीर में थी उसके अनुपात में वे अब भी चौगुना बोल लेती थीं। चिकित्सा शास्त्रियों का मानना है कि चाची जी का यह आचरण एक ऐसे रोग का सूचक है जैसे कि Autism, Kleptomania या Hypertension

जिसका रोगी को संज्ञान नहीं होता। मनो–चिकित्सक (Psychopath) ही ऐसे रोगी की कुछ सहायता कर सकते हैं।

117 / एच–2 / 56, पाण्डुनगर, कानपुर–208005

✧✧✧

नारी सशक्तीकरण

– श्री मुक्तेश जैन 'सरस'

नारी तुम सिर्फ नहीं श्रद्धा, तुम हो पीयूष का अमर स्रोत।
नीरस जन जीवन को करती, अपनी ममता से ओत–प्रोत।।
तुम शक्ति स्वरूपा दुर्गा हो, तुम ज्ञानदायिनी शारद हो।
मन वीणा को झंकृत करती, तुम मृदु संगीत विशारद हो।।
तुम गृहलक्ष्मी, लक्ष्मी स्वरूप, तुम अन्नपूर्णा माता हो।
तुम प्रथम शिक्षिका हो, शिशु के जीवन की भाग्य विधाता हो।।
तुम झांसी की रानी भी हो, तुम माता जीजाबाई हो।
तुम अमर क्रांति की हो मशाल, दुर्गा भाभी हो ताई हो।।
तुम ही शहीद की हो जननी, तुम भगतसिंह की माता हो।
तुम हो इन्दिरा–प्रतिभा पाटिल, भारत की भाग्य विधाता हो।।
हुंकार भरो रण चण्डी हो, यदि बुरी नजर कोई डाले।
मद तोड़ो ऐसे दुष्टों का, पड़ जायें प्राणों के लाले।।
तुम रहो संगठित और निडर, अपनी शक्ति को पहचानो।
अब नहीं कोई अबला दीखे, तुम शक्ति पुंज हो यह जानो।।

(महान कवि सर्वश्री जयशंकर प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त ने नारी के विषय में परम्परागत विचार प्रस्तुत किये। प्रसाद जी नारी को मात्र श्रद्धा का पात्र मानते थे –

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, आकाश रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।

गुप्त जी नारी को अबला ही मानते थे –

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में पानीं।।

श्री मुक्तेश ने वर्तमान परिवेश में नारी के सशक्तीकरण का उद्घोष किया है –सं.)

सरस साहित्य सदन, शीतल ज्वैलर्स, कुरावली–205265

✧✧✧

कहां आग से आग बुझी है

– श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश'

चले आग से आग बुझाने, कहां आग से आग बुझी है,
हिंसा से हिंसा उपजी है,कौन समस्या कब सुलझी है।

घृणा–द्वेष जिससे बढ़ता हो, कुछ भी हो पर धर्म नहीं है,
जो प्रयास तोड़े समाज को निश्चय ही सत्कर्म नहीं है।
स्वार्थ–सिद्धि में लिप्त व्यक्ति को मानव कहना नासमझी है,
चले आग से आग बुझाने, कहां आग से आग बुझी है।।

ईश्वर एक, सृष्टि सब उसकी, सब हैं अपने, कहां पराये,
छोटे और बड़े का अन्तर क्यों फिर जन जीवन में आये।
दीवारें फिर हमें खींचने की आपस में क्या सूझी है,
चले आग से आग बुझाने, कहां आग से आग बुझी है।।

सत्य–प्रेम–सद्भाव–विनय की यदि हम सब भाषा पढ़ लेते,
पर–सेवा में परमपिता की मनमोहक मूरत गढ़ लेते।
कभी न लगता कोई पहेली, इस जीवन में अनबूझी है,
चले आग से आग बुझाने, कहां आग से आग बुझी है।।

हर मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, गिरजे में प्रभु का निवास है,
हर अशान्त को शान्ति मिली है, हर अतृप्त की बुझी प्यास है।
फिर इन पर कैसा विवाद है, क्यों मानव की मति उलझी है,
चले आग से आग बुझाने, कहां आग से आग बुझी है।।

खोने का सुख पाकर देखो!

पाने में खो दिया स्वयं को, खोने का सुख पाकर देखो!
खुशियां अपनी बांट सभी में, पर–पीड़ा अपना कर देखो!!

एक सुखद संतोष मिलेगा,
एक नयी अनुभूति जगेगी।
सब के प्रति विश्वास जगेगा,
साम्य–समन्वित सृष्टि लगेगी।।
एक अनूठी तृप्ति मिलेगी,
मन में नव उल्लास जगेगा।
एक अलौकिक शान्ति मिलेगी,
अपना ही हर एक लगेगा।।
भेद–भाव से मुक्त हृदय कर, जीवन ज्योति जगा कर देखो!
पाने में खो दिया स्वयं को, खोने का सुख पाकर देखो!!

पर–हित जीना ही जीवन है
पूर्ण समर्पित मन पावन है।
रिमझिम प्रेम–फुहार निरन्तर,
बरसे तो हर दिन सावन है।।
नित्य नया स्वर गुंजित होगा,
काव्य सुधारस धार बहेगी।
एक नया परिवेश मिलेगा,
कवि को नव अभिव्यक्ति मिलेगी।।
शब्द–शब्द में नेह निमंत्रण, सबको गले लगा कर देखो!
पाने में खो दिया स्वयं को, खोने का सुख पाकर देखो!!

'पदमा कुटीर' सी–27, सेक्टर–बी, अलीगंज स्कीम, लखनऊ–226024

✧✧✧

जिजीविषा

— श्री अमर नाथ

तजो तुम मृत्यु के दर्शन को, बात करो अब जीने की
कैसे अमृत–पान हो सोचो, सोचो ना विष पीने की।

फूलों से तुम हंसना सीखो, कलियों से मुस्काना तुम
बुलबुल से तुम गाना सीखो, मैना से राग तराना तुम
नाचो मत्तमयूर की भांति, कोयल सा मस्ताना तुम
इन्द्र धनुष बांहों में भरकर, रंगी जीवन जीने की। **बात करो.......**

कोमलता खरहे से ले लो, हिरनी से लो भोलापन
मृदुलता कलकंठ से ले लो, श्वानों से लो अपनापन
निश्छलता गैया से ले लो, शलभ से सीखो समर्पण
कोमल, निर्मल, निश्छल, अर्पित, मृदुल साध हो जीने की। **बात करो........**

हो मुठ्ठी में चांद व सूरज, शुक्र–शनि हों चरणों में
धो चरणों को नभ की गंगा, पुष्प चढ़ाये चरणों में
हो उन्मुक्त गगन मन विचरे,अर्पण हो श्री–चरणों में
दूर क्षितिज के अरुण क्षेत्र में, बस्ती बसे नगीने की। **बात करो..**

पक्षु–पक्षी, मानव, वन–उपवन, जल–थल नभ हो नन्दनमय
दुख, अंधकार अज्ञान मिटे, सकल जगत हो ज्योतिर्मय
सांस–सांस हो सुरभित सबकी, प्राण प्राण हो चन्दनमय
कर के एकाकार ब्रह्म्म से, करो वन्दना जीने की। **बात करो.............**

पूर्ण ब्रह्म्म के घन में घुलकर, बरसो झीने–झीने तुम
परम–आनन्द मधु में रसकर, सरसो भीने–भीने तुम
चिदानन्द जो परम सत्य है, उसके एक नगीने तुम
राग द्वेष को छोड़ करो अब, बातें अक्ल–करीने की। **बात करो..**

वाणी में तुम घोल दो अमृत, शब्द–शब्द बने अमृतमय
मनसा वाचा कर्म हो अमृत, करो तुम जीवन अमृतमय
बोओ अमृत, फिर काटो अमृत, बने तब हर कण अमृतमय
घर–घर दीपक जलें अमृत के, खुशबू आवे जीने की। **बात करो..........**

401–ए, उदयन–1, बंगला बाजार, लखनऊ–226002

✧✧✧

इतिहास–सन्देश

— डॉ. शशि कान्त

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा।।

शक्ति का निरकुंश प्रवर्तन मानवता को कुचलता रहेगा।
दानव का मुखोटा नोचकर फिर भी मानव संभलता रहेगा।।1।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा।।

काल की धुरी पर युगों का याम क्षणों में बदलता रहेगा।
व्यक्ति का अहंकार और अन्ध स्वार्थ उसे ही कुचलता रहेगा।।2।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा।।

संचितो वंचितों का संघर्ष क्रान्ति का सूत्रपात करता रहेगा।
मूल्यों का अवमूल्यन नव मूल्यों का सृजन करता रहेगा।।3।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा।।

काल की सीमा असीम व्यक्ति को निस्सीम करती रहेगी।
क्रान्ति के बाद विश्रान्ति और पुनः क्रान्ति होती रहेगी।।4।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा।।

स्वार्थ के पक्षधर भ्रमजाल और भक्ति का नाटक रचाते रहेंगें।
तो भी शोधक छलावों से उबर सत्य की ओर बढ़ते रहेंगे।।5।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा।।

समय रुकेगा नहीं, इतिहास बढ़ता चलेगा।
व्यक्ति झुकेगा नहीं, पद–चिन्ह छोड़ता चलेगा।।6।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा।।

ऐसे पद–चिन्ह छोड़ना जो बटोही को रास्ता दिखाते रहेंगे।
ऐसी ठोकरें बनाना नहीं जो आने वाले को गिराते रहेंगे।।7।।

काल का चक्र चलता रहेगा, इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा।।

HINDU VIEW OF VEGETARIANISM

- Shri B.P. Sinha

(The author is a former member of the Indian Economic Service and he retired as Chief Economic Adviser to the Railway Board, Government of India. *Hindu* here signifies the Indian cultural view-point which includes Vedic-Sanatan Hinduism and its various offshoots, and Jainism, Buddhism and Sikhism, as has also been indicated by the author in footnote 1. - Editor)

Introduction

Justification of choice between vegetarian and non-vegetarian food has been a matter of fierce debate for a long time. Not much purpose would be served by going into the hackneyed arguments that have already been made or in cleverly projecting them to the advantage of the favoured one as someone has observed 'this is not an area of argument but intuition'. While the debate on vegetarianism versus non-vegetarianism has still been broadly referred here to see how the various views on the subject stand, the whole issue is finally addressed from a somewhat new angle – a Hindu view - for the following reasons:

A We all are Hindus[1] here and would appreciate the conclusions of this discussion to be especially relevant in relation to our philosophy.

B. Hindu philosophy has visualized the entire *Prakriti* in a threefold classification – *trigunamayee* – with an analytical purpose and has classified food and consumption, too, as *Sattvic, Rajasic* and *Tamasic.*

C. The Hindus have a full-fledged theory of consumption whose pattern and nature correspond to a person's general outlook or attitude towards life and his value system. This also reflects his preparedness for spiritual attainments.

D. The Hindu theory of consumption also includes a concern towards the quantity and quality of consumption that is essential for

sustenance vis-à-vis gratification of senses and also involving ostentation and wasteful consumption.

We may revert to these aspects later.

Typology & History

We eat and consume for our sustenance and growth. This essentially involves use of nature's unprocessed and processed resources. It is interesting that the body (*deha)* that is regarded as inanimate *(jada)* sans the soul and the one which the enlightened would not like to acquire in the deal for the next birth, must be taken good care of in this life so that it helps in achieving the main purpose of life, *i.e.,* getting rid of the life and death cycle. Otherwise too, self-prservation[2], as understood in common parlance, is a basic instinct of all beings.

Except for people who live in (a) extremely inhospitable climate, (b) belong to traditionalistic nomadic hunting and herding societies, and/or (c) are extremely poor, there is usually a **choice** between eating vegetarian or non-vegetarian food. But in this population, a large proportion seldom bothers to **consciously exercise** this choice as it is by tradition or family-background they are used to consuming certain types of food.

However, cultural evolution, beliefs, traditions, researches and fashion have given rise to several combinations of food-types along with the vegan.[3]

1 Lacto-ovo-vegetarian – allowing dairy products, egg and honey.

2 Lacto-vegetarian – allowing dairy products & honey but not egg.

3 Ovo-vegetarian – allowing egg and honey but not dairy products.

There are some finer combinations to the above categories as well.[4]

A relatively small proportion of people are found to be lacto-vegetarian and a still smaller proportion of them exercises a **conscious choice** regarding food habits and /or towards changing them. Many

people change their food choices under compulsions of health or on medical advice, under inspiration of a Godman, or due to non-availability of certain types of food at some locations, etc. A very large proportion of people take **both** vegetarian and non-vegetarian food. Making a choice is a non-issue to them unless personal taste is considered. Within this group, a sizeable number of people do not consume certain types of non-vegetarian food on religious considerations (Hindus usually don't take beef and the Muslims avoid pork). Especially among Hindus, a large number of people also avoid taking non-vegetarian food on certain days and occasions (*e.g.*, on Tuesdays, *Navaratri, Ekadashi*, and on solemn religious ceremonies like *Shraddha, Chautha,* etc). Many Hindus restrict themselves to taking egg (some take only non-fertilized ones) and /or fish. In some other religions too (*e.g.*, Christianity) similar restrictive traditions are in vogue. For all practical purposes, however, **hardcore vegetarians and vegans constitute a small minority in the world;** the proportion might be somewhat higher at locations where sizeable Hindu population is concentrated.

Earliest references to the concept and practice of vegetarianism are found in the history of ancient India and Greece[5] in the context of non-violence against animals. In the West, with the advent of Christianity, however, the concept of vegetarianism virtually vanished but during renaissance it re-surfaced in the form of orders of monks not to eat meat (though not banning fish) for ascetic reasons. In India, on the other hand, religious and philosophical invocations contained in the scriptures (**Manusmriti, Srimadbhagawat, Adhyatma Ramayana, Mahabharata, Bhagwadgita,** etc.) kept the tradition alive. In the 19th and the 20th centuries, a widespread resurgence of vegetarianism took place, among other things, due to recognition of medicinal benefits and reinforcement of ideas favouring non-violence

against animals (and more recently on environmental considerations). A large number of societies/institutions in various countries cropped up to propagate and promote vegetarianism. Even in the context of Islam, where meat eating is allowed provided it is *halal*, formation of a Muslim Vegetarian/Vegan Society affiliated to the International Vegetarian Union has taken place.[6]

According to an estimate, Indian vegetarians (overwhelmingly lacto-vegetarians) constitute over 70 percent of the world's vegetarians[7] and make up for 20-42 percent of the country's population. The range of the latter being too large it might not be a very dependable estimate - and in all probability an over-estimate. Around 5 percent of the world's population, mainly concentrated in the Indian subcontinent, would thus seem to comprise of lacto-vegetarians.

The debate

Interestingly, while only a small proportion of people exercise their conscious choice in respect of taking vegetarian or non-vegetarian food, there is no dearth of arguments involving global and other far reaching considerations for and against both. Vast literature has been built around them since it is human nature to appear right. The various arguments may broadly be classified into six categories:

I. *Health, nutrition and longevity*: Comprehensive and strong arguments are made out that a vegetarian diet is deficient in some of the nutrients that are important from the viewpoint of health and strength of humans, such as, protein, iron, vitamin B12, calcium and fatty acids while they are easily available in non-vegetarian diet. It has been pointed out that to a large extent the common deficiencies of these nutrients can be made up from vegetarian items, such as, **protein** in the form of amino acid from milk, and also from soya, hempseed, pulses, etc; **iron** from black beans, cashews, kidney beans, lentils,

oatmeal, resins, sunflower seed, ete.; **fatty acids** from walnuts, pimpkin seeds, canola oil, etc; **vitamin B12** from dairy products, fortified foods and dietary supplements;[8] **calcium** from leafy greens, etc. Vegetarian diet is also often accused of inducing **E coli** infection but the latest thinking is that E coli may be acquired from an excrement-infected food or human commensal bacteria. The crux of the matter is that sufficient awareness must exist among the people about the food deficiencies and safety.

On the other hand, 'vegetarian diets offer a number of nutritional benefits, including lower levels of saturated fat, cholesterol, and animal protein as well as higher levels of carbohydrates, fiber, magnesium, potassium, folate, and anti-oxidants such as vitamins C and E and phytochemicals'.[9] A number of studies[10] have also brought out that a properly planned vegetarian diet satisfies the nutritional needs at all stages of life and vegetarians run lower risk of cancer, ischaemic heart disease, osteoporosis, etc. It helps in containing the body mass index, cholesterol, blood pressure, heart disease, hypertension, Type-2 diabetes, renal disease, osteoporosis and dementias (*e.g.*, Alzheimer's disease), etc. Several studies have given the advantage of longevity to the vegetarians but it is believed that it is not very significant and decisive.

II. ***Ethical considerations:*** The ethical argument against the non-vegetarian food revolves round the pain and the trauma that the animal suffers during the killing. It is argued that in a vast majority of situations people can make an effective choice of diet that would not involve killing of animals. The sentient animals do not want to die but have no choice; their families and friends suffer; their expectations of enjoyment are dashed by the blade that chops off their necks, and the only protest they are able to make is the shrieks in some cases and the violent shaking of their beheaded limbs while loosing to the excruciating pain

of death. While violence against animals has been an old argument, in recent times it has received impetus in reaction to 'industrial farming' (of animals) whose proponents claim that the animals there are taken good care of, say, against the elements, disease and feed shortage. In practice, they are actually reared for the sole purpose of getting more meat and are kept in confinement that is much worse than their natural habitat notwithstanding all its drawbacks.

An argument frequently made on behalf of the non-vegetarians is that in the nature there is life in everything (plants included), which has been scientifically proved. The various species, therefore, constitute food for each other and the violence involved in such a case is inescapable and justifiable. Serious explanations and counter arguments have been offered here by the protagonists of vegetarianism. A theory[11] has been put forward that in the evolution of nature the order that has been followed is ether to air, air to fire, fire to water and water to earth.[12] In the watery existence, of which vegetation is the result before the process of evolution reaches the stage of animate beings, the feeling of pain is minimal – almost non-existent. It is also because the sensory organs (*Jnanendriyas*), through which pleasure and pain are experienced, are almost entirely dormant in vegetation, except for touch *(sparsh)*. So, if the human being consumes vegetation for his existence, least harm is done to the nature and his conduct is, indeed, in consonance with the intentions of nature since *Ahimsa* and mutual tolerance are the two basic requirements for nature's conservation, preservation and growth. The **Adhyatma Ramayana,** too, traces the full cycle of *Jeeva* in its evolution to *annamaya Kosha* and graduation to *praanmaya kosh* leading finally to re-birth.[13] Thus it is argued that killing of animals for food, rather than being natural is actually against the nature.[14] In an overwhelmingly large number of cases, an effective alternative to vegetarian food is available and,

therefore, the killing is not for 'survival' but is reckless and generally to satisfy the taste buds and is encouraged by misplaced social mores and customs. It is also argued that the ultimate agony suffered by the killed animals and their silent curses generate 'negative' waves and impulses in the universe. If there is any significance and effect of the well recommended 'positive' thoughts and impulses, there would be contrary effects of the 'negative' ones too. These negative impulses are described to work to the detriment of the universal balance.

III. ***Religious pronouncements:*** Several religions in the world have made pronouncements against eating of meat. **Hinduism** and **Jainism** view vegetarianism as a virtuous life-style. Non-violence (*ahimsa*) as an ideal is common to both the religions as well as in several other offshoots of Hindu religion. In addition to *ahimsa,* the Hindu Vaishnav Dharma subscribes to vegetarianism on two other counts. First, the food itself is considered as an offering to God or the deity after making which only the 'devotee' consumes it as '***prasad***'. Therefore, only pure food is offered to God or the deity and taken by the devotee. Secondly, there is a theory emphasizing that the kind of food (*Sattvic, Rajasic* or *Tamasic*) determines the attitude and thinking of a human. (This is discussed in greater detail subsequently). While some types of vegetarian food are classified as *Sattvic,* meat, etc. are categorized as *Tamasic*. In **Srimadbhagwat** (Skandha7, Chapter 15, and Slokas 7-8) Narad tells Yudhishthira that those who understand the substance of *Dharma* never include meat in the food-offering to the ancestors during the *Shraddhakarma* since the ancestors are much happier to be offered the food taken by the sages than that including meat. Further, for those who wish to live in accordance with the religious precepts no religion is higher than not doing any harm to a being in thought, speech and action.

In **Mahabharata** (Anushasana Parva), Bhishma replies in detail to the query of Yudhishthira about *ahimsa* and the

consequences of taking meat. This exposition can be taken as the representative view of the Hindu Sanatana Dharma as he has quoted views of several authorities in his discourse. Among the many things mentioned by Bhishma in this context the more important ones are as follows:

The religion of *Ahimsa,* into which all other religions merge, stands on four legs, *viz.,* observing non-violence in thought, speech and deed and not eating meat.

The sages have pointed out three causes of violence: desire for meat, supporting meat-eating and having a taste for meat.

People have to suffer for the sin of committing violence and praising meat-eating;

Those sages who wished to have good health, good looks, longevity, high intellect, purity, strength and good memory, shunned meat-eating.

According to Manu, the one who neither takes meat, nor indulges in violence and nor encourages violence by others, is a friend of all beings.

According to Narad, the one who wants to enhance his own 'meat' (health) by eating others' meat has surely to suffer.

The one who was a meat and honey eater earlier but gave them up altogether subsequently earns merit *(Punya)* in a measure that even the study of all **Vedas** and performance of all *yajnas* cannot match.

Those who eat meat get a short life and, therefore, should shun meat-eating in their own interest.

On this earth, nothing is dearer than one's soul. Therefore, one should be kind to all beings and should consider others like one's own self.

A counter argument is often advanced that in ancient India many sages and the Aryans generally practised meat-eating and even the beef was not spared. There has been considerable literature for and against this contention. But it is quite an established fact that the

bovine animals in general and the cow in particular, had a especially venerable place in the socio-religious system of ancient India and beef was not generally eaten. The people, however, comprised both lacto-vegetarians and non-vegetarians. At any rate, after passage of several millennia and all round growth in culture and civilization making possible wider choices and refinement in sensitivities, the lifestyles of people in ancient times present only alternatives and not courses for emulation in present times.

Jainism, too, upholds the ideal of the vegetarian diet as the Hindus. Non-violence is an indispensable part of spiritual progress. According to Mahavira, 'violence in thought, indulging in (physical) violence, abetting violence by others and to contemplate violence is a sin.' No product of the dead animals for consumption is acceptable in the Jain system. Honey, too, is prohibited. Among the staunch Jains, several are fruitarians. Several of them don't take even roots and plant products that grow under the soil because in getting them by pulling the plants, insects and other life-forms may be killed. Covering by cloth of nostrils and mouth by Jain **munis** to avoid killing of insects during breathing and speaking, is well known.

It is said that as per the Pali canon of **Theravada Buddhism**[15] Buddha himself ate meat and also did not prohibit his followers from doing so. A distinction was, however, made between the direct killing and the already killed animals. The hunters and butchers were considered as pursuing unethical careers. But, on the other hand, the monks could not refuse taking meat preparations if received in alms. Most Buddhists in Asia are observed to be taking meat. But several injunctions in Sanskrit require the monks in **Mahayan Buddhism** that largely covered India, to be vegetarians as it helps a *bhikkhu* imbibing and developing piety and kindness.

In **Sikhism,** the opinion is somewhat divided whether meat-eating is prohibited by the religion. Guru Nanak is believed to have

pointed out that consumption of any food involves a drain on the resources of the earth and thus on life. On the other hand, Guru Gobind Singh, the Tenth Guru, prohibited the Sikhs from the consumption of *halal* or *Kutha* meat (any ritually slaughtered meat) since sacrificing an animal in the name of God is mere ritualism.[16] A large majority of Sikhs is non-vegetarian.

Vegetarianism is not a favourite concept in **Christianity,** too, although Jesus Christ is sometimes quoted to have said: 'whosoever eats flesh of an animal is actually eating his own flesh himself.'[17] Most Christians believe that earlier both the animals and the humans were vegetarian but after the Great Deluge, God permitted humans to eat meat. There is no harm in eating meat or being a vegetarian because when God gave control of earth to man He allowed him to eat whatever he wished to take. On the other hand, some Christian leaders believe that Christ was a vegetarian.[18] But according to many others, in the **Book of Daniel** vegetarianism was not favoured as the food that was offered to the Pagan gods was 'unholy'. The **Bible's New Testament** points out that a person's dietary choice was a matter of small consequence and should not be a matter of confrontation.[9] However, "all Oriental Orthodox, Eastern Orthodox, and Eastern Catholic monastics abstain from meat year round, and many abstain from dairy and sea food as well. Laity generally abstains from animal products on Wednesdays (due to a traditional belief that it was a Wednesday on which Judas had arranged to betray Jesus Christ) and Fridays (because Jesus was crucified on a Friday) as well as during the four fasting periods of the year: the Great Lent, the Apostle's Fast, the Domitian Fast and the Nativity Fast. Fasting is seen as purification and regaining of innocence. Through obedience to the Orthodox Church and its ascetic practices, the Orthodox Christian seeks to rid himself or herself of the passions, or the disposition to sins."[20]

A number of Jewish scholars – mediaeval and modern – (*e.g.*, Rabbi Joseph Albo and Rabbi Abraham Kook) regard vegetarianism as a moral ideal that lends strength to human character. In **Judaism**, many believe that Adam did not eat animal flesh. It is also informed that members of the ancient Essene, who had ties with both ancient Judaism and Christianity, practised strict vegetarianism in support of non-violence.

Although **Islam** preaches kindness towards animals, it allows meat-eating provided it is *halal*, that is, prepared following the prescribed procedure. Several Muslims have taken to vegetarianism on medical grounds but choose not to emphatically preach adherence to it.

In spite of clear expressions by several religions towards vegetarianism, only around 5 percent of the world's population today is lacto-vegetarian. This indicates the importance of other factors – man's sensory indulgence being an important one amongst these – that has resulted in ignoring of religious injunctions. It would seem that religion, too, cannot stand against man's pleasurable indulgences.

IV Spiritual aspects: Arguments in the realm of spiritualism provide strength to religious pronouncements in preaching adherence to vegetarianism. The view that the type of food one eats affects his mind, attitudes, thought processes, sentiments and values finds reference in several scriptures. In **Bhagwadgita** (Chapter 17, Slokas 7-10) it is elaborately stated as thus: "Food also, which is agreeable to different men according to their intake disposition, is of, and likewise sacrifice, penance and charity, too, are of three kinds each; hear their distinction as follows: Foods which promote longevity, intelligence, vigour, health, happiness and cheerfulness and which are sweet, bland, substantial and naturally agreeable, are dear to the *Sattvic* type of men. Foods which are bitter, acidic, salty, over hot, pungent, dry and burning, and which cause suffering, grief and sickness, are dear to the *Rajasic* type of men. Food which is half-cooked or half-ripe,

insipid, stale and which is impure too, is dear to men of a *Tamasic* disposition."

It would appear that in making such general categorization, the **Gita** does not explicitly refer to meat or non-vegetarian preparations and even the same item may be differently cooked to qualify for two different categories. But this hardly affects the logic and intention of the scripture. The type of food – cooked or otherwise – so generally described is found likable by men of different dispositions. According to a learned saint, 'the Sanskrit word *amedhyam*used in Sloka 10 (meaning 'putrid') covers items like meat produced from ovum and semen, fish, egg, etc. much impure items, that are dead and the very touch of which necessitates bathing'[21] According to him, while describing such *Tamasic* items as *amedhyam* it would seem that God does not even want to name them. It is also argued that depending on his attitude, the consumer might derive a different quality-category of food from the one in which it is originally classified. Thus otherwise *Sattvic* food taken with an attitude of *raga* (attachment) may actually become *Rajasic* in nature. Another learned person, countering the argument that unfertilized egg does not qualify as involving killing, points out that the 'vegetarian egg', while not capable of fertilization and its eating might not involve violence as such, still has all the ingredients needed for creating life which increases the desire in the consumer for re-birth and thus comes in the way of his welfare.[22] There is also a view that there is nothing like a 'vegetarian egg'.[23]

The purpose of the above theorization is that attitudes both in the production(*himsa* or *ahimsa*) and consumption (involvement/ indulgence) different kinds of foods matter in affecting the welfare of individuals (his preparedness towards spiritual advancement) and of the natural environment at large. Both the actual consumption as well as the desire to consume *Tamasic* food should be shunned.

V. Environmental consideration: While making decisions about the choice of food, the individual preference (shaped by tradition, taste, social and economic status, health condition, awareness about medicinal benefits, situational compulsions, group pressures, fashions, etc.) plays a decisive role, in justifying the choice, bogey of environmental considerations is often raised. The non-vegetarians would argue that by killing aimal for food a balance in the nature is maintained; otherwise the animal population would become too large. Further, by switching over to vegetarian diet unsustainable pressure on agriculture would come about. Still further, while labelling the use of animals for food and thus for human sustenance as violence, the protagonists of vegetarianism conveniently forget that in the consumption of vegetation food humans take away the feed of a large variety of animals that are herbivorous.

On the other hand, the progagonists of vegetarianism derive support from the researches that point out that in the production of meat of a certain quantity several times more water, crops and other resources are consumed (by the animals involved) than would be required to meet the food requirement through vegetarian items.[24] In terms of such estimates, the Stockholm World Water Institute, Sweden, and the World Health Organization (WHO) have expressed concern over the estimated 840 million undernourished people with uncertain food supply and another 2 billion by 2025.

Important as such issues are, as has already been pointed out, any discussion on merits and demerits of vegetarianism cannot be expected to sway decisions of large numbers of people. Indeed, all kinds of people are required by the society and have important role in this world. Problems of population pressure have existed for several centuries. One would be well advised to have faith in the ingenuity and capabilities of man to tackle them, as has indeed been happening, in the long run.

VI. Natural attributes of humans and other arguments: It is argued by the protagonists of vegetarianism that the nature has not made humans to be **carnivorous**. They do not possess sharp pointed teeth, strong jaws, rough tongue, larger liver and kidneys, low Blood-PH, etc., that are quite common amongst the carnivorous animals to aide their survival. Further, in sharp contrast to the carnivorous animals, humans have much larger intestines in relation to their bodies appropriate to digest vegetarian food and their saliva and digestive system are much less acidic. Hence the humans are more suitable to be vegetarian; they are essentially **herbivorous**. In counter argument, it has been pointed out that the early humans did have better suited bodies and survived for ages on non-vegerarian food. With natural evolution, development of agriculture and changes in life-style they have undergone several physiological changes. Further, the humans today need not hunt and use teeth and jaws to tear the meat of the prey; these are times of animal farming and preparation of delicious soft cuisines. The argument of going against the 'nature of man' is not found tenable by such people. Not surprisingly, an overwhelming majority of humans today take meat. Indeed, the humans today have enriched their diet by eating both types of food and can appropriately be called **omnivorous.**

Some other arguments have also been made to clinch the issue by both sides. For example, the protagonists of vegetarian claim that the vegetarian food is cheaper and is available more conveniently. Further, with phenomenal progress made by civilization and opening of alternative production possibilities and technological progress, substantially enhancing productivity, it is gross to include meat and such preparations that involve killing and cruelty to animals in the diet of the modern man. Economic scarcity and pricing of eatables varies by place and situation reflecting in interplay of their demand (tastes/choices) and supply (resource base) and any one sided generalization

cannot be made. The argument involving the dynamics of civilization is, indeed, weighty and has to do with human sensitivity. We may revert to it in a wider context later after the next section.

Consumption of animals in a larger perspective

It is commonly known that other than food, animals are utilized for a vast variety of purposes in our day-to-day life. This can appropriately be called their consumption in a larger perspective. It involves killing and violence, too, and hence should be considered along with intake of food products. Animal products have traditionally been used for a vast variety of personal, household and industrial consumption, such as, medicine, footwear, dress material, caps, bags and suitcases, wallets, belts, seats, furniture items, sport-goods, adhesives, etc. Killing of cocoons for making silk fibre (*e.g.*, for sarees) is well known. Animals are killed sometimes exclusively for such uses and often the limbs and substances from their bodies are obtained/ extracted along with killing for food. In recent times, there has been an explosion in the use of animal products in making cosmetic items and goods of common consumption in households. The rendering plants have sprouted all over for cleaning, cooking and subjecting the carcasses and other body parts of animals to intense pressure to extract oily substances that are used in commercial production of a range of products.[25] A small illustrative list of such substances and items mainly in preparing cosmetics may be found in the Appendix. Many of these substances, however, also have vegetarian alternatives but the animal products are widely and indiscriminately used in view of their easy availability and comparative economic advantage seen by the manufacturers and users. The purpose is to point out the great extent of our dependence on animals for the modern life-style and the extent of their reckless killing and exploitation. Many of such animal uses go unnoticed by ignorant and trusting consumers. They generally escape being subjected to the type of considerations made in the context of

eating meat and other non-vegetarian items. **This situation leaves almost every one a non-vegetarian in the contexst of total consumption in this world.** Several issues arise here. Is such an overwhelming dependence on animals and their consequent killing or exploitation avoidable? Would any effort to substitute non-vegetarian consumption by plant based or synthetic consumption found acceptable in most cases? We may try to seek answers to these questions in the model of Hinduism.

Hindu view of vegetarianism

We may consider how the Hindu philosophy, the mainstream Upanishadic formulation, would address the issues raised above. The Hindu philosophy considers the present life as a continuum of a *jeevatma's* journey, on the vehicle of *karmas*, towards merging into *Parmatman*. The present human life, being a *karma yoni,* also provides *karma swatantrya* or a precious opportunity to performing the *karmas* in a righteous manner. With such a vision, it must also regard **vegetarianism** as much more than sheer consumption of food items, on the one hand, and also test its desirability as *karma,* on the other.

In order to sustain himself in this world, the man must draw upon the nature's animate and inanimate resources. In this interaction, two interrelated things become relevant – the principle of *Ahimsa* and positive actions towards others. *Ahimsa* requires not putting any other being to discomfort. In a given situation and the way our civilization has developed, it may be extremely difficult to observe this principle in practice in an absolute manner. Two precautions, however, must be observed. Firstly, one must draw upon the nature's resources to the minimum required extent (but what would also include maximization of one's capabilities in a healthy manner) – along the lines of the principle of *Aparigraha.*[26] This as such would minimize, though at the individual's level, drawal on the nature's resources – just the opposite of unbridled consumption leading to reckless resource

use, including the animals. At a physical plane, this has been manifesting in global warming and rupturing of the ozone layer. Having a discerning attitude is the hallmark of a Hindu seeker (*saadhak*). We must be very careful not only about the ramifications of consuming an item, its price, etc., but also its ingredients and the background of its production and trade. Sensitivity to violation of any illegal or immoral (including violence) conduct involved would help in shunning its consumption, seeking alternatives or foregoing its use altogether. If one's sensitivity and conviction in this regard are strong enough, one would feel satisfied of his action rather than having a feeling of deprivation.

Secondly, one must try to give back to (compensate) the nature for drawing on its resources for his sustenance. The very thought of doing something good to others is rewarding as it fits in well into the scheme of universal evolution. This also merges with the second (positive) aspect of *Ahimsa* necessitating compassion, empathy, kindness, etc., towards other beings; in short, loving God's creation. **All this constitutes, in the context of consumption, vegetarianism as per the Hindu view.** An excouraging feature of Hindu philosophy /religion is that returning to the right path is always welcome and rewarding. In **Gita,** the Lord offers assurance to take one into His fold and to write off (in the sense of *jeevatma* not 'feeling' the agony of punishment) his past mistakes. Please recall, in the specific context of vegetarianism, it was emphasized that if a person who had been taking meat earlier but gives it up subsequently, he would earn more merit (*punya*) as compared to the one who has studied all the **Vedas** and performed various *Yajnas*. At least one's own satisfaction and inner happiness are immediately guaranteed.

The above course of action must be practised in a natural manner – as a matter of ordinary course – without a tinge of ego, submitting and surrendering all actions *(karmas)* to God. There is no scope for a 'holier than thou' attitude. Others may be provided

guidance as a suggestion, if they so request, but not opposed and certainly not ridiculed for any differences in approach. Observing a genuine humility is also called for. One must not forget that the *karma* theory is value-neutral, *i.e.*, one will have to reap the consequences of mistakes of omissions and commissions whether or not they were conducted knowingly or in ignorance. Hence, God's mercy and kindness should always be invoked. This idea has been well expressed in the following *sloka* that used to be chanted by Gandhi ji after his prayer meetings:

कर चरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनंजं वा, मानसं वाऽपराधं
विहितंडिवहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व मे
जय जय करुणाब्धे श्री महादेव शम्भो।

(अर्थात्, हाथ–पैर द्वारा, वाणी या कर्म द्वारा, या फिर श्रवण, दृष्टि या मन द्वारा – जाने और अनजाने में हुए – सभी अपराधों को, आपकी जय हो, हे करुणासागर महादेव! आप क्षमा करें।)

[Rendered into English: Whatever indiscretions - knowingly or unknowingly, I might have committed by use of my hands and feet, by speech or action, by listening or seeing, or by thought (*manas*) may be pardoned by, all praise to Him, the most benebolent Lord Shiva.]

Appendix

Some animal substances utilized in manufacturing
of cosmetics and other selected products

1. Animal fat – in cosmetics, lipstick and eye make-up.[27]

2. Keratin – a protein taken from the horns, hooves, feathers, quills, and hair of animals, the scales and claws of reptiles, the shells of tortoise, turtle, terrapin, and the feathers, beaks and claws of birds, the armour of crabs, the plates of baleen whales – in shampoo, conditioner, bodywash, body-lotion, toner, facial moisturizer, make-

up foundation, mascara, lipstick, color cosmetics in hair rinse, and permanent waves solutions, etc.

3.Gelatin or Gel – in shampoos, face-masks and other cosmetics.

4. Stearic fatty acid – fat from cows, sheep, dogs, cats, and stomach of pigs – in soaps, lubricants, hair-sprays, conditioners, deodorants and creams.

5. Arachidonic fatty acid – a liquid unsaturated fatty acid taken from the livers of animals - in skin creams and lotions to soothe the rashes.

6. Oleic fatty acid – obtained from inedible tallow – in soft soap, permanent waves solutions, creams, nail polish, lipsticks, etc.

7. Glycerin – from animal fat - in soap.

8. Mink oil – by killing minks and taking fat layer – in anti-ageing creams and softening leather.

9. Cochineal – red pigment from crushed female Cochineal insect (70,000 beetles are crushed to make a pound of red dye) - used in all red/pink colouring in cosmetics.

10.Allantoin – uric acid from mammals – in creams and lotions.

11.Carbamide (Uric Acid) – in deodorants, hair colourings, hand creams, lotions, shampoos, etc.

12.Cholesterol – a steroid alcohol in all animal fats and oils, nervous tissue, egg yolk, and blood – in cosmeties, eye creams, shampoos, etc.

13.Collagen – fibrous protein derived from animal tissue – in all anti-ageing creams.

14.Guanine, Pearl Essence, Fish scales – in shimmery make-up like lipstick, nail polish and eye shadow.

15.Placenta (after birth) – from the uterus of slaughtered animals – widely used in skin creams, shampoos, masks, etc.

16. Tallow – from rendered beef fat – in soaps, lipsticks, shaving creams and other cosmetics.

17.Vitamin A – from fish liver oil – in creams, perfumes, hair dyes.

18.Lard – fat from hog abdomens – in shaving creams, soaps, other cosmetics.

19.Polypeptides – obtained from slaughterhouse wastes – in analgesic drugs.

20.Wax – from animas and plants – in lipsticks, depilatories and hair-straighteners.

Footnotes

1 It is difficult to define Hinduism and who a Hindu is. But for purposes of discussion here a broad, somewhat tautological, definition of Hindu has been evolved. "A Hindu is a person born in a Hindu family who has inherited the *Samskaras* that largely determine the beliefs and condition some important aspects of life-style of that person and his family. Even if not conscious about them many of the beliefs, values, mode of thinking, etc. of the Hindus derive from the interpretation of the **Vedas** and the thoughts contained in the *Grantha-trayee* (**Srimadbhagwat, Ramayana** and **Gita**) for whom Hindus have a natural regard." The term Hindu here is not confined to the believers in the mainstream of *Sanatana Dharma* only but also broadly includes its offshoots, such as, Arya Samaj, and Jainism, Buddhism (as practiced in India) and Sikhism.

2 The Hindu scriptures, however, warn a beginner that "self" is not to be confused with the "body".

3 Strictly plant-based food not containing any animal product.

4 **Fruitarian** is a diet of only fruits, nuts, seeds and other plant matter that can be gathered without harming the plant.

Su-vegetarian, originating in Hinduism, excludes all animal products and fetid like onion, garlic, etc.

Macrobiotic diet includes whole grains and beans, but sometimes fish too.

Raw vegan includes fresh and uncooked fruit, nuts, seeds, & vegetables.

Some other terms depicting combinations of food items are also in currency, such as:

Lessetarianism – focuses on reducing but not eliminating proportion of meat in diet.

Semi-vegetarianism – excludes certain meats, *viz.*, in Pascetarianism all meats except fish, shell-fish and crustacca, and in Pollotarianism all meats except poultry and fowl.

Flexitarianism – makes occasional exceptions to vegetarian diet.

5 Spencer, Colin – **The Heretic's Feast: A History of Vegetarianism** (London, 1993).

6 Its proponents quote from the **Holy Quran**: 'There is not an animal on earth, nor a bird that flies on its wings – but they are communities like you'. (6:38).

7 **Vegetarian Resource Group, 2003**: *How Many Vegetarians Are There?*

8 Since human body preserves (up to 30 years) and re-uses vitamin B12 its deficiency is quite uncommon.

9 From **Wikipedia,** the free encyclopedia – **Vegetarianism.**

10 By the American Dietetic Association and Dieticians of Canada, among others.

11 References are to be found in **Upanishads** and **Adhyatma Ramayana.**

12 In universal cataclysm (*Maha Pralaya)* a reverse order ensues.

13 **Kishkindha Kandam,** *Slokas 17-31* (Muni's explanation to Sampaati, the brother of Jataayu, the vulture who laid his life fighting Ravana in the last lap of Sita's abduction to Lanka). Having bequeathed its existence in heaven after using up the accumulated *punya* and spending some time in *chandraloka* (symbol of mind), *Jeeva* descends on earth. It sprouts as a (rice) plant, rice becomes food on whose digestion it becomes semen and impregnates a woman, forms a body in her womb (*annamaya kosh)* that grows and is imbued with *chetana*

(life, *praanmaya kosh*) in the fifth month and after acquiring all limbs takes birth after nine months. The process describes vegetation as an important stage of nature's evolution on earth and as a primordial substance after water in the evolutionary process, thus **before life** in body with sensory endowments.

14 In **Bhagwadgita** too (see chapter 3, Slokas 14 & 15) the nature's evolutionary cycle is beautifully connected with the imperative of performance of **Veda**-approved actions *(karmas)* for the mutual benefit of the man and the nature. Proper understanding of this life cycle is considered necessary for the seeker (*Saadhak)* to be able to adjust his attitude and life-style in accordance with the same.

15 **Theravad Buddhism** is the oldest surviving Buddhist sect; ***Sthavirvad*** is its name in Sanskrit. It subscribes to the ancient teachings of Buddhism. It is estimated that there are about 800 million Theravadi Buddhists in the world now, mostly concentrated in the Asian countries outside India.

16 **Wikipedia,** the free encyclopedia, *op. cit.,* p.8.

17 See, for example, Aggarwal, Gopinath – **'Vegetarian or Non-vegetarian: Choose Yourself,** Jain Book Agency, New Delhi, 1991.

18 **Old Testament,** Daniel 1:8-16.

19 Roman 14:1-3.

20 **Wikipedia**, the free encyclopedia, *op.cit.,* p.9.

21 Swami Ramsukh Das – **Sadhak Sanjeevani, Hindi Tika,** Gita Press, Gorakhpur, 56th Ed., 2007, p. 1048.

22 Sinha, D.M. – *Shakahaar ka Mahattva,* **Samaadhan Paripatra Sankhya 18**, 2005 (**Adhyatma Patrika**, Meerut, mimeographed.)

23 Gopinath Aggarwal in his book cited in fn 17 above, has argued that the so called 'vegetarian' eggs are like 'still births' and 'dead bodies' and pass through the same stages of birth as the hatchable eggs do. Considering the market for such eggs they are being chemically induced

from the hen's system like other eggs. On the farms, the hens are kept under cruel situations (artificial light to keep them awake) to eat and produce more eggs; their reproduction cycle is also interfered with. The unfertilized eggs possess the same 'harmful qualities' as the other eggs have.

24 According to Alex Kirby, BBC News Online Environment Correspondent, as per scientific researches, animals fed on grains and also those which rely on grazing, need far more water than grain crops:

A kilogram of grain-fed beef needs at least 15 cubic meters of water;

A kilo of lamb from a sheep fed on grass needs 10 cubic meters of water;

A kilo of cereals needs from 0.4 to 3 cubic meters of water.

25 In developing countries like India, such substances have sometimes even been used for adulterating *Desi Ghee* and cooking oils.

26 *Aparigrahasthirye janmakathamtasambodhah,* that is, One who is not greedy is secure. He has time to think deeply. His understanding of himself is complete. – **Yoga Sutra** II.39.

"The more we have, the more we need to take care of it. The time and energy spent on acquiring more things, protecting them and worrying about them cannot be spent on most basic questions of life. What is the limit to what we should possess? For what purpose? For whom and for how long? Death comes before we have had time to even begin considering these questions." - Translation and Commentary by TKV Desikachar

27 "Anyone looking at the elegant ads portraying glamorous models wearing beautiful make-up would never suspect that it is truly a make-up of the refined, colored and perfumed oil derived from dead dogs, cows or pigs."- **Meow Cosmetics**– www.meowcosmetics.com.

C-2/43-B, Keshaypuram, Delhi-110035

✧✧✧

शाकाहारी जागरूक हों

(डॉ. चीरंजी लाल बगड़ा की Vegetarian Guide, अप्रैल–जून 2013, से निम्नलिखित विवरण साधार उद्धृत किया जा रहा है। श्री सिन्हा के पूर्वगत लेख के Appendix का यह अनुपूरक है। – सम्पादक)

डिब्बा बंद खाद्य पदार्थ को लम्बे समय तक खराब होने से बचाने के लिए एवम् विशिष्ट स्वाद देने के लिए उनमें कई प्रकार के अन्तरघटक (additives) का मिश्रण किया जाता है।

भारत सरकार ने खाद्य पदार्थों को दो भागों में वर्गीकृत करते हुए मांसाहार के पैकेट पर भूरा (brown) एवम् शाकाहारी पर हरा (green) निशान लगाए जाने का कानून बनाया है तथा साथ ही खाद्य पैकेट पर 'घटक' (ingredient) का विवरण लिखना भी कानूनन आवश्यक बनाया है।

अन्तरघटक को नियंत्रित करने के लिए एक कोड प्रणाली लागू है जिसे E Numbering System कहते हैं। इसकी विस्तृत जानकारी Food.info.net, veggieglobal.com, Wikipedia.com.truthlabeling.org आदि पोर्टल पर आसानी से उपलब्ध है।

भारतवर्ष सहित विश्व के अधिकांश देशों में यह लागू है। ई–नम्बर को इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है –

100 Colouring Agents
200 Conservation Agents
300 Anti-oxidants
400 Emulsifiers, Stabilizers and Thickeners
500 Anti-Coagulants
600 Taste Enhancers
900 Modified Starches

इन अन्तरघटकों में कुछ का स्रोत मात्र प्राणीजन्य है और कुछ का प्राणीजन्य एवम् वनस्पति जन्य दोनों है।

दुखद है कि भारतवर्ष में इन अन्तरघटकों के प्रयोग को खाद्य पैकेट पर शाकाहार–मांसाहारी लेबल लगाते वक्त अनदेखा कर दिया जाता है जब कि अधिकांश अन्तरघटकों के आयात के लिए मांसाहार संबंधी लाइसेंस लिया जाता है। साथ ही यह भी दुखद है कि किसी भी

प्रयोगशाला में अन्तरघटक का स्रोत शाकाहार है या मांसाहार, यह निर्धारण करना प्रायः मुश्किल होता है।

फलस्वरूप ऐसी वस्तु के सेवन से शाकाहारी व्यक्ति भी अनजाने/अनचाहे मांसाहार भक्षण कर लेता है।

कुछ ई–नम्बर जिनका स्रोत मात्र प्राणीजन्य (Animal derived only) ही होता है, वे निम्न हैं –

E. No.	Full name	Category	Sourc of product
E-120	Cochineal, Carminic Acid	Red colour, used in in food colouring	Animal origin
E-153	Carbon Black	Maroon/black colour used in food product	Various parts of animal
E-422	Glycerol	Sugar/Alcohol	Fat of animals
E-441	Geletine	Emulsifier and stabilizer	Animal origin
E-442	Ammonium Phosphatides	Emulsifier to keep colour at high temperature	Animal fat
E-471	Mono & Diglycerides	Emulsifier - to make sponge, & for preserving food products for longer time	Fatty acids of animal origin
E-476	Polyglyceral Polyricinoleate	Emulsifier and Stabilizer	Animal origin
E- 542	Bone Phosphate	Anti-caking agent	Bones of animals
E-631	Disodium Inosinat	Flavour enhancer	Animal origin
E-635	Disodium 5 Ribonucleotides 5:	Flavour enhancer :	Animal origin
E-904	Shellac	Glazing agent	Human hair & wings of hen
E-910	S-Cystein	Improving agent	Human/animal origin
E-920	L-Cysteine Hydrochlorid	Improving agent	Animal origin
E-921	L-cyseine Hydrochlorid Monohydrate	Improving agent	Animal origin

अधिकांश शाकाहरी आईस्क्रीम, बिस्कुट, चॉकलेट आदि के डिब्बे पर ई–471 स्पष्ट लिखा हुआ देखा जा सकता है।

46, Strand Road, 3rd Floor, Kolkata-700007

कषाय और परिग्रह

– डॉ. शशि कान्त

क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार विषम कषाय बतायी गयी हैं। जैन धर्म में आत्म–साधना का जो स्वरूप निर्दिष्ट है उसके अनुसार हर श्रावक–श्राविका को गृहस्थ जीवन में रहते हुये भी इन कषायों से अपने को विरत रखना चाहिए। साधुवेश धारण करने पर इन कषायों का लेश भी नहीं रहना चाहिए। परन्तु विडम्बना यह है कि जैनियों के कुछ साधु और साध्वी इन कषायों से, प्रायः, आबद्ध दीख पड़ते हैं। उनका साधुवेश त्याग नहीं वरन् मायाचार का प्रतीक ही प्रतीत होता है। यदि मंत्रियों और राजनेताओं से सत्कार प्राप्त करते हुये फोटो खिंचवाना और उनका प्रसारण करना साधुचर्या का एक आयाम है तो इसे मान कषाय के पोषण के अतिरिक्त कदाचित् कोई नाम नहीं दिया जा सकता। चातुर्मास के उपलक्ष में तथा अन्य प्रकार भी चंदा इकठ्ठा करना लोभ कषाय की प्रवृत्ति का साक्षात् उदाहरण ही कहा जायेगा। विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्यक्रमों का सिलसिला भी जारी है जिसे परिग्रह संचयन के अतिरिक्त कोई नाम दिया जाना संभव नहीं है। जो महाराज और माताएं इस प्रकार के कषायजन्य कर्मों में लिप्त हैं उनके लिए क्रोध आ जाना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। स्वयं के प्रचार पर समाज के लाखों रुपयों का व्यय कराया जाना भी मान कषाय का ही एक उदाहरण है।

समाज की धर्म परायण व धर्म रक्षक संस्थाओं, माननीय समाज नेताओं तथा विद्वान प्रबुद्ध सम्पादकों ने चतुष्कषाय जनित और अपरिग्रह का विवर्णवाद करने वाली इस कुप्रवृत्ति का कोई संज्ञान नहीं लिया प्रतीत होता है। अन्यथा जैनों के निष्परिग्रही कहे जाने वाले साधु–साध्वी वर्ग में यह कुप्रवृत्ति पनपती ही नहीं। जिस प्रकार लौकिक राजनीतिक क्षेत्र में कलम को खरीदने का उपक्रम चलता है वही उपक्रम जैन समाज में धार्मिक क्षेत्र में भी चल रहा है जो कि क्षोभ का विषय है।

(*श्री श्री सत्य बोध* मासिक पत्रिका, दिल्ली, के माननीय सम्पादक ने जनवरी 2011 में एक विशेषांक के लिए हमारा लेख आमंत्रित किया था।

उसी के संदर्भ में हमने अपने उक्त विचार उस पत्रिका के विशेषांक में प्रकाशनार्थ भेजे थे। परन्तु हमें खेद है कि अपने नाम के अर्थबोध को नकारते हुये कदाचित् सम्पादक महोदय हमारे यह विचार अपने विशेषांक में प्रकाशित नहीं कर सके और उन्होंने पत्रिका भेजने का अनुग्रह भी नहीं किया।

सरकार द्वारा आरक्षी रु. चालीस हजार प्रतिमास पर उपलब्ध कराया जाता है। जिन साधुओं ने आरक्षी की सुविधा प्राप्त की है, उसका व्यय वहन किये जाने के लिए उन साधुओं के लिए **परिग्रह संचयन** आवश्यक है। गतवर्ष 2012 में लखनऊ में **भगवान महावीर की मूर्ति** स्थापित करने के लिए एक **गणिनी ने सरकार से चौबीस लाख रु. प्राप्त** किये थे जो **अशोभनीय व्यापार का उदाहरण है परन्तु किसी संस्था ने** इसका संज्ञान लेने का साहस नहीं किया **यद्यपि अ.भा.दि.जैन परिषद के** 36वें राष्ट्रीय अधिवेशन के पहले इसे उक्त संस्था के महानुभावों के संज्ञान में लाया जा चुका था। इस सम्बन्ध में हम अपने विचार **शोधादर्श 76**, नवम्बर 2012/जनवरी 2013, के पृ. 136–138 पर भी व्यक्त कर चुके हैं।

विगत 65 वर्षो से समाज की गतिविधियों से हमारा निकट सम्पर्क रहा है। पिता जी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन जैन–धर्म और इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान होने के साथ ही समाज की प्रगति से भी सम्बद्ध रहे थे और उन्हीं के सान्निध्य एवं प्रेरणा से हमें भी शोध–खोज करने एवं समाज की प्रवृत्तियों का निष्पक्ष एवं प्रगतिवादी परीक्षण करने की समझ प्राप्त हुई। अब प्रायः 82 वर्ष की आयु में जब हम अपनी समाज के नेतृत्व वर्ग में शिथिलाचार के प्रति झुकाव देखते हैं तो स्वाभाविक रूप से एक प्रकार की क्षुब्धता की अनुभूति होती है। अपने यह विचार इस आशय से प्रकाशित कर रहा हूं.ताकि समाज का प्रबुद्ध वर्ग और युवा वर्ग मूल्यों के प्रति सजग हो तथा शिथिलाचार के प्रति सहिष्णु न हो।)

साहित्य सत्कार

अभिनन्दन ग्रन्थ महाकवि विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद'; सं. डॉ. दिनेशचन्द्र अवस्थी, श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश', श्रीमती स्नेहलता; प्र. भारत बुक सेन्टर, 17, अशोक मार्ग, लखनऊ; 2013; पृ. 326 (सचित्र); मूल्य रु. 500/–

श्री विनोद चन्द्र पाण्डेय जी के जीवन और कृतित्व पर आधारित यह **अभिनन्दन ग्रन्थ** स्वयं अभिनन्दनीय है। श्री पाण्डेय का जन्म 16 नवम्बर 1940 को अमेठी में हुआ था और उनका विवाह सौ. सुमित्रा पाण्डेय से 25 फरवरी 1962 को सम्पन्न हुआ था, जिसके अनुसार दाम्पत्य जीवन की स्वर्ण जयन्ती मनाने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हो चुका है और हमारी कामना है कि वे परिवार में सुख सम्पन्नता से पूर्ण रहते हुये हीरक जयन्ती मनायें। श्री पाण्डेय मेरे सहकर्मी रह चुके हैं। समाज कल्याण विभाग में 1–11–1989 से 25–7–1991 तक वे संयुक्त सचिव थे और मैं भी 1989–90 में उस विभाग में विशेष सचिव था। उत्तर प्रदेश सचिवालय हिन्दी परिषद द्वारा एक काव्य सन्ध्या के आयोजन में भी मुझे उनका आतिथेय करने का सुयोग प्राप्त हुआ था। 1990 के गणतंत्र दिवस पर उन्होंने सौ. सुमित्रा जी के साथ हमारे निवास पर **कान्त बाल केन्द्र** विद्यालय के आयोजन में अध्यक्षता की थी। विगत 11 जून 2013 को पिता जी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की 25वीं पुण्य तिथि पर आयोजित कार्यक्रम में वे विशिष्ट अतिथि थे। इस वर्ष हिन्दी दिवस पर (14–9–2013) को उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा उनकी साहित्यिक सेवाओं का सम्मान करते हुये उन्हें **साहित्य–मनीषी** अलंकरण से समादृत किया गया और रु. दो लाख का पुरस्कार भी दिया गया। 30 दिसम्बर को साहित्यकारों की सभा में उन्हें **बाल साहित्य पुरोधा** सम्मान से अलंकृत किया गया।

यद्यपि उन्हें "डॉक्टर" की मानद उपाधि प्राप्त हुई थी, उन्होंने अपने नाम के आगे डॉ. शब्द का प्रयोग नहीं किया। इस प्रसंग में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी बी.ए., बी.एल., और डॉ. सम्पूर्णानन्द जी बी–एस.सी. के अपवाद उल्लेखनीय हैं।

अभिनन्दन ग्रंथ में सम्पादकीय के अतिरिक्त 62 लेख आदि हैं। उनके प्रति काव्यांजलि और उनके वंश वृक्ष के अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर सर्वश्री विष्णु कान्त पाण्डेय, डॉ. परमानन्द जड़िया, नन्द

कुमार मनोचा 'वारिज', डॉ. दिनेशचंद्र अवस्थी, डॉ. महेश भार्गव 'विभोर', अवधेश 'नमन,' और डॉ. रंगनाथ मिश्र 'सत्य' के लेख हैं। उनकी निम्नलिखित कृतियों का मूल्यांकन विशिष्ट विद्वानों द्वारा 52 लेखों में किया गया है:– **अशोक महान, गीत शतक, जन कविता, अमर सुभाष, साहित्यिक निबंघावलि, राष्ट्रवाणी, अन्योक्ति विनोद, दानवीर शिवी, भगवान बुद्ध, हिन्दी बाल काव्य, हृदय वीणा, भाव सुरभि, हिन्दी वन्दना, वीर सौभद्र, भगीरथ, गुरु दक्षिणा, पर्यावरण के गीत, कथा महात्मा गांधी की, स्वतंत्रता के प्रिय सेनानी, विज्ञान गीत,** और **राष्ट्रपति के पत्र।** इनके अतिरिक्त उनके बहुविध साहित्य का परिचय पृ. 334–35 पर उपलब्ध है।

सम्पादक–त्रय का परिचय भी सम्मिलित है। यह उचित होता कि जो समीक्षात्मक लेख दिये गये हैं उनमें उनके प्रकाशन की तिथि भी दी जाती। इन समीक्षकों में मेरी जानकारी के अनुसार कम से कम पांच, यथा, डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र, डॉ. लक्ष्मी शंकर मिश्र 'निशंक', पं. शिव शंकर मिश्र, श्री बलवीर सिंह 'रंग' और डॉ. (कु.) रमा सिंह अब हमारे बीच नहीं हैं।

श्री विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद' जी के साहित्य का पारायण करने का मुझे यदा–कदा सुयोग प्राप्त होता रहा है। अभिनन्दन के स्वरों में मैं भी अपना एक स्वर मिला रहा हूं और अपनी शुभ कामना प्रस्तुत कर रहा हूं।

जैन होने का अर्थ : ले. श्री सूरजमल बोबरा,; प्र. ज्ञानोदय फाउण्डेशन, 9/2, स्नेहलता गंज, इन्दौर–452003; 3–11–2013

11 वर्ष पहले लेखक ने **जैन होने का अर्थ** विषयक लेख लिखा था। उसी का यह परिवर्धित संस्करण है। इसमें जैन जीवन शैली के प्रति जनमानस में जो भ्रांत धारणाएं हैं उनका निराकरण करने का सयुक्तिक प्रयास किया गया है। पुस्तक यद्यपि आकार में मात्र 32 पृ. की है इसमें विषय को सहज सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है जो अभिनंदनीय है।

बोधिसत्व उवाच : डॉ. प्रद्युम्न 'अनंग', प्र. स्वाति अकादमी, बी–5/263, यमुना विहार, दिल्ली–110053; 2013; पृ. 224; मूल्य रु. 300/–

डॉ. प्रद्युम्न 'अनंग' श्रमण चिन्तन धारा के अग्रणी विचारक हैं। वे 1 दिसम्बर को 85 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके हैं। उनकी यह कृति उनके

मौलिक चिन्तन की परिणति है। चिन्तन को 61 परिच्छेदों में प्रस्तुत किया गया है। उनका यह कथन विशेष रूप से चिन्तनीय है कि –"सम्पूर्ण वासनाओं की बंधनकारी श्रृंखलाओं से मुक्ति ही जीवन का परम श्रेय है।"

विभिन्न बिन्दुओं पर लेखक ने अन्तर कथाओं के माध्यम से और सम्वाद शैली में विषय को प्रस्तुत किया है जो सहज और सुबोध है। आयु के इस कगार पर भी डॉ. 'अनंग' ने जो प्रस्तुति की है उसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

हीरक–माला : ले. श्री हीरालाल जैन दिवाकर; प्र. दिवाकर प्रकाशन; पूर्व सुभाष टाकीज, जबलपुर; अगस्त 2013

श्री दिवाकर की इस कृति में प्रथमतः संस्कृत में 40 श्लोक हैं और उसके बाद उनका हिन्दी में पद्य रूपान्तरण हैं। अंत में जैन धर्म का तात्विक विवेचन किया गया है। यह कृति मात्र 14 पृष्ठों की है।

श्रीमद्भगवद्गीता (मर्म और सन्देश – 3) : सं. व प्र. श्री दामोदर भगेरिया, 13, एम.जी.डी. मार्केट, जयपुर–302002; जुलाई 2013; पृ. 108; मूल्य रु. 100/–

श्री दामोदर भगेरिया ने **गीता** के विभिन्न बिन्दुओं पर 49 विद्वानों और संतों के विचार संकलित किये हैं। यह विचार **गीता से जुड़ें** पत्रिका में 2002 से 2006 तक के अंकों में प्रकाशित लेखों से संकलित किये गये हैं। **गीता** के मर्म को समझने में यह सहायक होंगे।

श्री भगेरिया ने **श्री हनुमान चालीसा (चतुष्टयम्)** जो प्रोफेसर चंद्रभानु भारद्वाज द्वारा संपादित एवं स्व. श्रीमती कौशल्यादेवी धर्मार्थ न्यास जयपुर से प्रकाशित है, की कृति भी प्रेषित की है।

साहित्य–भूषण डॉ. परमानन्द जड़िया की कृतियां

डॉ. परमानन्द जड़िया के अब तक प्रकाशित 101 ग्रंथों का वर्गीकृत विवरण प्रकाशित हुआ है। इनमें 4 महाकाव्य, 7 कथा संग्रह, 2 उपन्यास, 2 नाटक, 4 निबन्ध संग्रह, 3 संस्मरणात्मक निबंध संग्रह, 13 खण्ड काव्य, 3 प्रबन्ध काव्य, 8 गज़ल संकलन, 50 काव्य संकलन, 3 सम्पादित ग्रन्थ, और 2 आंग्ल भाषा में काव्य, सम्मिलित हैं। इस वर्ष **श्री**

सीता स्तवन (चालीसा), श्री राम चालीसा और **श्री कृष्ण चालीसा** का प्रणयन कर प्रकाशन किया गया है।

उन्होंने अपनी चौबीस कृतियां तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के पुस्तकालय को भेंट की है जिनका आभार के अन्तर्गत उल्लेख है। इनकी बहुत सी कृतियों का परिचय **शोधादर्श** में प्रकाशित किया जा चुका है।

स्व. मुरलीधर रस्तोगी की उर्दू में रचनाओं का प्रकाशन उन्होंने हिन्दी में रूपान्तरण करके किया है। **मुरली के स्वर**, काव्य संकलन का प्रकाशन 2004 में हो गया था और **पाण्डुलिपियों के प्रकाशित पृष्ठ** का प्रकाशन नवम्बर 2012 में हुआ था। रचनाओं की भाषा हिन्दी है और विषय भक्ति–परक है परन्तु कुछ रचनायें ग़ज़ल के रूप में उर्दू में भी हैं जिन्हें फारसी लिपि से देवनागरी लिपि में अंतरित किया गया है। श्री 'मुरली' की रचनाओं का अन्तर्भाव निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है:–

हमने न माना कोई वेश कोई कम रहा।
चादरें शबनम के नीचे जो रहा वह नम रहा।

और भी – मर गया 'मुरलीधर' क्यों न कांधा दिया।
दिल से अब भी गई क्या बुराई नहीं।।

जिन स्तुति : संकलन कर्ता एवं प्र. श्री रिखबचन्द जैन, मालिक, टी.टी. इण्डस्ट्रीज़, नई दिल्ली–110005

पॉकेट साईज की 152 पृष्ठीय पुस्तिका में श्री रिखबचन्द जैन ने 56 वर्गों के अंतर्गत जैन धर्म के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी देने के अतिरिक्त बहुत से भजन, स्तुतियां और पद्य इसमें संकलित किये हैं। अधिकांश भजन और पाठ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों आम्नाय के अनुयायियों में लोकप्रिय है। मंगलाचरण का संशोधित रूप संकलन कर्ता के मौलिक चिंतन से प्रसूत है और इसमें कुन्द्रकुन्द या स्थूलिभद्र का नाम निर्देशन नहीं करने से यह जैन धर्म के सभी अनुयायियों द्वारा अंगीकार किये जाने के योग्य है –

ॐ मंगलं आदिश्वर प्रथम जिनेन्द्राय।
मंगलं भगवान् वीरो,
मंगलं गौतमो गणी।

जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।
सर्वमंगल मांगल्यं,
सर्वकल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां,
जैनं जयतु शासनम्।।

काल चक्र : लेखक डॉ. संजीव कुमार गोधा; प्र. श्री अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद ट्रस्ट, 129, जादौन नगर बी, स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर–302015; 2013; पृ. 72; मूल्य रु. 12/–

डॉ. संजीव कुमार गोधा द्वारा **काल चक्र** शीर्षक पुस्तक में जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में कालचक्र की विवेचना की गई है। यह पुस्तक पाठकों को इस विषय का समग्र ज्ञान कराने के साथ ही उनमें कुछ जिज्ञासों को भी रोपित करेगी।

डॉ. हुकमचंद्र भारिल्ल की कृतियां

1 क्षमावाणी, पृ 32

2 आत्मा ही परमात्मा है; पृ 32

3 तत्त्वार्थमणिप्रदीप; पृ. 248

क्षमावाणी और **आत्मा ही परमात्मा है** पुस्तिकाओं का प्रकाशन अ.भा.दि. जैन विद्वत परिषद ट्रस्ट द्वारा किया गया है और **तत्त्वार्थमणिप्रदीप (पूर्वार्ध)** का प्रकाशन पं. टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, ए–4 बापू नगर, जयपुर–302015 द्वारा किया गया है। यह तीनों ही कृतियां 2013 में प्रकाशित हुई हैं।

क्षमावाणी और **आत्मा ही परमात्मा है** –32 पृष्ठीय पुस्तिकाओं में डॉ. हुकमचंद भारिल्ल ने इन विषयों को सामान्य रूप से समझाने का सयुक्तिक प्रयास किया है।

तत्त्वार्थमणिप्रदीप (पूर्वार्ध) में जैन आगम के तल–स्पर्शी अध्येता और जैन सिद्धांत के प्रकाण्ड विद्वान डॉ. हुकमचंद जी भारिल्ल ने आचार्य उमास्वामी कृत **तत्तवार्थ सूत्र** के 10 अध्यायों में से प्रथम पांच अध्यायों की सरल सुबोध भाषा में विवेचना की है।

मंगलाचरण में आचार्य उमास्वामी ने जिस जिनेश्वर की वंदना की है वह मेरी समझ में उस परम श्रेय सत्व की वैचारिक अवधारणा है। डॉ. भारिल्ल ने एक निष्ठावान जैन विद्वान की दृष्टि से उसकी व्याख्या की है।

ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में मोक्ष मार्ग का निरूपण किया गया है। दूसरे अध्याय में जीव तत्त्वार्थ की चर्चा है। तीसरे अध्याय में अधो–लोक और मध्य–लोक की चर्चा है जहां सांसारिक जीव पाये जाते हैं। चौथे अध्याय में ऊर्ध्व–लोक की चर्चा है। पांचवें अध्याय में अजीव तत्त्वार्थ की चर्चा है। डॉ. भारिल्ल ने एक नैष्ठिक पंडित की दृष्टि से अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है। यह व्याख्या मूल रूप में ग्रन्थ को समझने में जन साधारण को सहायक होगी। ग्रन्थ में जो विवरण है वह प्रायः वैचारिक अवधारणा पर आधारित हैं। उसका वस्तुनिष्ठ (objective) दृष्टि से, वैज्ञानिक रूप से यथाज्ञात विवेचन को दृष्टि में रखते हुये, परीक्षण किया जाना भी अभिप्रेत है। डॉ. भारिल्ल द्वारा पांडित्यपूर्ण विवेचन के लिए विद्वत् जगत उनका आभारी रहेगा और **तत्त्वार्थमणिप्रदीप** के उत्तरार्ध की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करेगा।

Gems of Jaina Wisdom : ले. श्री दशरथ जैन और प्रो. प्रकाशचन्द्र जैन; प्र. जैन ग्रन्थागार 239, गली कुंजस, दरीबां कलां, चांदनी चौक, दिल्ली–110006; 2013; पृ. 128; मूल्य रु. 300/–

आचार्य श्री कुलभद्र स्वामी द्वारा संस्कृत में रचे गये **सार समुच्चय** का हिन्दी रूपान्तर ब्र. सीतल प्रसाद जी द्वारा 31 अगस्त 1937 को पूरा किया गया था। मूल ग्रन्थ का प्रकाशन श्री नाथूराम प्रेमी द्वारा माणिकचंद दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला के अंतर्गत **सिद्धान्त सार आदि संग्रह** के शीर्षक से 1922 में प्रकाशित किया गया था। प्रस्तुत पुस्तक में मूल संस्कृत और ब्र. सीतल प्रसाद जी द्वारा किये गये हिन्दी अनुवाद को देने के साथ ही श्री दशरथ जैन एवं प्रोफेसर प्रकाशचंद्र जैन द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। प्रारंभ में पृ 7 और 8 पर टीकाकरण और मंगलाचरण हिन्दी व अंग्रेजी में है। पृ 9 से 125 तक **सार समुच्चय** ग्रन्थ के 328 श्लोकों का 31 विषयों के अंतर्गत वर्गीकृत करके मूल, हिन्दी अनुवाद और अंग्रेजी अनुवाद दिया गया है। जैन धर्म के सिद्धान्तों का सर्वग्राह्ये सहज विवेचन हिन्दी और अंग्रेजी के अनुवादों के माध्यम से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। उचित होता कि इसमें कुलभद्राचार्य का परिचय भी दिया जाता और कृति का समय भी निर्दिष्ट किया जाता।

– डॉ. शशि कान्त

✧✧✧

अभिनन्दन

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के आजीवन सदस्य **श्री निर्मल कुमार सेठी जैन** ने दिनांक 8 जुलाई को और समिति के कोषाध्यक्ष **श्री बिजय लाल जैन** ने दिनांक 30 नवम्बर को 75 वर्ष की आयु पूर्ण की, जिसके उपलक्ष में उनकी प्लेटिनम जयंती पर उनका हार्दिक अभिनन्दन निवेदित है।

समिति के प्रेमी **श्री धर्मवीर,** सेवानिवृत्त प्रमुख अभियंता, सार्वजनिक निर्माण विभाग, उत्तर प्रदेश, ने सहधर्मिणी **सौ. सरोज जैन** के साथ दिनांक 7 दिसम्बर को दाम्पत्य जीवन की हीरक जयंती सम्पन्न की, जिसके लिए उन्हें भी हार्दिक अभिनन्दन निवेदित है।

दिनांक 9 जुलाई को जैन विश्वभारती, लांडनूं, में **प्रो. डॉ. दामोदर शास्त्री** को **कातन्त्र रूपमाला** विषयक संस्कृत में टीका पर राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा **संस्कृतशास्त्र पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

दिनांक 14 सितम्बर को लखनऊ में हिन्दी दिवस पर उत्तर प्रदेश शासन द्वारा श्री विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद' को **साहित्य मनीषी** सम्मान प्रदान किया गया। 30 दिसम्बर को उन्हें **बाल साहित्य पुरोधा** के अलंकरण से सम्मानित किया गया।

दिनांक 21 दिसम्बर को उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा **डॉ. सौ. राका जैन** को पालि साहित्य पर विशेष अध्ययन के उपलक्ष में **विविध पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

जैन पथ प्रदर्शक के सह–सम्पादक **पं. संजीव कुमार गोधा** को जैन अनुशीलन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, द्वारा "**जैन दृष्टि में तीन लोक – एक समीक्षात्मक अध्ययन**" विषय पर पी–एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई। उनके द्वारा प्रणीत **काल चक्र** पुस्तक का परिचय साहित्य सत्कार के अंतर्गत दिया गया है।

श्री कुन्द–कुन्द महाविद्यालय, खतौली, के **प्रो. डॉ. कपूरचंद जैन** को **भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में जैनों का योगदान** विषय पर शोध के लिए वीर कुंवरसिंह विश्वविद्यालय, आरा, द्वारा 2011 में डी.लिट्. की उपाधि प्रदान की गई थी और उनके इस ग्रन्थ का प्रकाशन प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोधसंस्थान, वैशाली द्वारा, 2013 में किया गया है। इसके पूर्व उन्हें 1985 में **पुरदेव चम्पू का आलोचनात्मक अध्ययन** पर रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय द्वारा पी–एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई थी। स्वतंत्रता संग्राम में जैनों के योगदान पर उनकी प्रकाशित पुस्तकों पर **शोधादर्श** 53 और 59 में समीक्षाएं पहले भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

राजस्थान के वरिष्ठ होम्योपैथ **डॉ. एम.एल. जैन 'मणि'** को राजीव गांधी Excellence Award से सम्मानित किया गया है।

मानस चन्दन के सम्पादक **श्री सुनील कुमार सारस्वत** को हल्दीघाटी–राजसमंद में हिन्दी दिवस के अवसर पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी राष्ट्रीय सम्मान प्रदान किया गया।

26 अगस्त को कुण्डलपुर (दमोह) में विद्यान्वेशी आचार्य श्री वर्धमान सागर पुरस्कार **ब्र. जयनिशांत जैन** (टीकमगढ़) को प्रदान किया गया।

कुण्डलपुर में ही 27 अगस्त को श्रुतसेवी यंग अवार्ड युवा प्रतिष्ठाचार्य **पं. मनोज जैन शास्त्री** (दिल्ली) को प्रदान किया गया।

12–14 अक्टूबर को गुना में सम्पन्न अष्टपाहुड अनुशीलन राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी के अंतर्गत **तीर्थंकर वाणी** के सम्पादक **डॉ. शेखरचंद जैन** (अहमदाबाद) को महाकवि आचार्य ज्ञान सागर पुरस्कार और **पं. अरुण कुमार जैन** (श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर) को श्री सुधा सागर श्रमण संस्कृति एवं तीर्थ संरक्षण पुरस्कार प्रदान किया गया।

14–15 अक्टूबर को ही गुना में श्री अ.भा.दि.जैन विद्वत् परिषद के 39वें अधिवेशन में **डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन** (सनावद) को डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य स्मृति पुरस्कार और **पं. सरमनलाल जैन दिवाकर** (सरधना) एवं **पं. सुखदेव जैन** (सागर) को क्षुल्लक श्री गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति विद्वत् परिषद पुरस्कार प्रदान किया गया। **पं. अभय कुमार जैन** (बीना) और **डॉ. श्रेयांस सिंघई** (जयपुर) को भी पं. गोपालदास बरैया स्मृति विद्वत् परिषद पुरस्कार प्रदान किया गया।

जुलाई से दिसम्बर 2013 की अवधि में **श्री निर्मल कुमार सेठी, प्रतिष्ठाचार्य पं. विमल कुमार सौंरया** और **डॉ. भागचंद्र जैन 'भास्कर'** के सम्बन्ध में अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशित करने का आयोजन था परन्तु किसी कारण अभिनन्दन ग्रन्थों का प्रकाशन नहीं हो सका। इस अवधि में दो उल्लेखनीय घटनाएं और हैं –

1 **शोधादर्श** की सह–सम्पादिका **डॉ. सौ. अलका अग्रवाल**, ललितपुर जनपद की सर्वश्रेष्ठ शिक्षिका सर्वसम्मति से नामित की गई।

2 श्री नलिन कान्त जैन की सुपुत्री **आयु. मेहा जैन** का शोध पत्र Internet surfing and related mental health problems in present scenario, a review विषय पर Indian Journal of Health and Wellbeing में प्रकाशित हुआ।

सर्वश्री सौंरया, सेठी और भास्कर जी के अभिनन्दन ग्रन्थों के लिए हमारे उद्गार आमंत्रित किये गये थे, उन उद्गारों को नीचे प्रकाशित किया जा रहा है।

पं. विमल कुमार जैन सौंरया के प्रति शुभ कामना संदेश

"यह जानकर प्रसन्नता हुई कि पं. विमल कुमार जैन सौंरया के सम्मान में उनके 75वें जन्म दिवस के शुभ अवसर पर अभिनन्दन ग्रन्थ **प्रतिष्ठा प्रज्ञ** प्रकाशित करने की योजना है। सौंरया जी का जन्म 12 अगस्त 1939 को मड़ावरा, जिला ललितपुर, में हुआ था और अब उनका स्थायी निवास सैल सागर, टीकमगढ़, में है। उन्होंने धार्मिक शिक्षा के साथ ही विश्वविद्यालयी शिक्षा एम.ए. (हिन्दी) और एम.ए. (राजनीति शास्त्र) तक प्राप्त की। 1959 से 2002 तक वे शासकीय सेवा में अध्यापन से जुड़े रहे और सन् 2002 में शासकीय देवेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय से प्राचार्य के पद से सेवानिवृत्त हुये। टीकमगढ़ से **वीतराग वाणी** के नाम से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन वे गत 32 वर्षो से निरंतर करते आ रहे हैं। उस पत्रिका में उनके शोधपरक लेखन के माध्यम से उनसे मेरा परिचय हुआ। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद और अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद से वे सम्बद्ध रहे हैं। एक प्रतिष्ठाचार्य के रूप में भी उनकी ख्याति रही है। मेरी हार्दिक कामना है कि श्री सोंरया जी स्वस्थ रहकर अपने धार्मिक, सामाजिक, और साहित्यिक प्रवृत्तियों में अग्रसर रहें।"

श्री निर्मल कुमार सेठी जैन के प्रति संस्मरण और शुभ कामना

"मुझे याद पड़ता है कि श्री निर्मल कुमार सेठी से हमारे परिवार का परिचय 1970 के लगभग हुआ था। एक नवयुवक के रूप में उन्होंने उत्तर प्रदेश में एक नव–उद्योगपति के रूप में अपना व्यवसाय प्रारंभ किया था। आसाम प्रदेश में तिनसुकिया में इनके पिता जी एक व्यापारी के रूप में प्रतिष्ठित थे। श्री निर्मल कुमार ने सीतापुर में अपने पिता जी के नाम से **हरकचंद फ्लोर मिल** की स्थापना की थी। उस समय वह प्रायः 30 वर्ष के नवयुवक थे। सन् 1970 के लगभग वह हमारे पिता जी डॉ. ज्योति

प्रसाद जैन के सम्पर्क में आये और उन्होंने उनसे सीतापुर में आयोजित महावीर जयंती के कार्यक्रम में अध्यक्षता करने का आग्रह किया। तभी से निर्मल कुमार जी हमारे पिता जी को अपना धर्म गुरु मानते रहे और धार्मिक एवं सामाजिक कार्यो में उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते रहे। उसी समय हमारे चाचा जी श्री अजित प्रसाद जैन से भी उनका सम्पर्क हुआ।

भगवान महावीर की 2500वीं निर्वाण जयंती मनाये जाने के लिए गठित उत्तर प्रदेश शासन की **श्री महावीर निर्वाण समिति** में चाचा जी ने उन्हें सदस्य रूप में सम्मिलित किया। 1976 में **तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश,** के आजीवन सदस्य के रूप में भी वे सम्बद्ध हुये। चाचा जी से 2005 में उनके दिवंगत होने तक सेठी जी का सामाजिक क्षेत्र में निकट सम्पर्क निरंतर बना रहा। **श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा** से संलिप्त होने में भी श्री निर्मल कुमार जी के लिए पिता जी और चाचा जी प्रेरक रहे। 1981 में श्री निर्मल कुमार जी महासभा के अध्यक्ष निर्वाचित हुये और चाचा जी के विशेष सहयोग से महासभा का कार्यालय अजमेर से लखनऊ लाया गया तथा उसके मुख पत्र **जैन गजट** साप्ताहिक का प्रकाशन लखनऊ से प्रारंभ किया गया।

एक उद्योगपति के रूप में श्री निर्मल कुमार ने अपना कार्य सीतापुर की आटा मिल से प्रारंभ किया था। लखनऊ में भी उन्होंने अपना कार्यालय/आवास स्थापित किया था और इस प्रकार हमारे पिता जी और चाचा जी से उनका सम्पर्क निरंतर बना रहा। लखनऊ में उन्होंने ऐशबाग रोड पर स्थित श्री वेंक्टेश्वर फ्लोर मिल को क्रय कर लिया था और **नन्दीश्वर फ्लोर मिल** के नाम से उसका संचालन प्रारंभ किया था। 1981 में महासभा का अध्यक्ष होने के बाद अपनी नंदीश्वर फ्लोर मिल के भवन में ही उन्होंने महासभा का मुख्यालय अजमेर से लखनऊ स्थानांतरित होने के बाद स्थापित किया। महासभा की सभी गतिविधियों का तथा महासभा के अंतर्गत प्रकाशित **जैन गजट** (साप्ताहिक), **जैन महिलादर्श, श्रुत संवर्धिनी** और **प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार** पत्रिकाओं का प्रकाशन कार्यालय भी वहीं रखा गया।

श्री निर्मल कुमार सेठी 1981 से निरंतर महासभा के अध्यक्ष के पद के दायित्व का निर्वहन कर रहे हैं। 32 वर्ष की इतनी दीर्घ अवधि के लिए महासभा का अध्यक्ष पद संभालने का श्रेय किसी अन्य महानुभाव को प्राप्त नहीं हुआ।

19वीं शताब्दी में ब्रिटिश शासन की सम्पूर्ण रूप से स्थापना के बाद भारतीय समाज के विभिन्न समुदायों में इस बात की आवश्यकता की प्रतीति हुई कि उन्हें अपनी पहचान स्थापित करनी चाहिए और संगठित होना चाहिए ताकि शासन में उनका वर्चस्व स्वीकार हो सके। जैन समुदाय में भी इसकी आवश्यकता अनुभव की गई।

जैन धर्म की दिगम्बर आम्नाय के अनुयायियों द्वारा विक्रम सम्वत 1952 (ईस्वी सन् 1894) में कार्तिक मेला के अवसर पर श्री जम्बु स्वामी भगवान की निर्वाण भूमि चौरासी मथुरा में **श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा** की स्थापना की गई। इसके प्रथम सभापति मथुरा के सेठ लक्ष्मणदास थे। इस संगठन का प्राथमिक उद्‌देश्य यह था कि भारत के विभिन्न भागों में बसे हुये दिगम्बर आम्नाय के अनुयायी जैनों को संगठित किया जाये और आम्नाय के मूल सिद्धांतों के प्रति उन्हें प्रतिबद्ध रखा जाये, साथ ही जैन साहित्य एवं तीर्थ स्थलों का संरक्षण किया जाये।

1894 से जो महानुभाव इस संस्था से अध्यक्ष रूप से सम्बद्ध रहे उनमें सेठ लक्ष्मणदास, सर सेठ हुकमचंद, सर सेठ भागचंद सोनी, रायबहादुर राजकुमार सिंह, सेठ भंवरीलाल बाकलीवाल, रायसाहब चांदमल पाण्ड्या और सेठ लिखमीचंद छाबड़ा के नाम उललेखनीय हैं। यह संस्था शनैः–शनैः निष्क्रिय होती जा रही थी। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का प्रारंम्भिक उद्‌देश्य सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समुदाय को संगठित करना था, परन्तु उसकी आगमिक पारम्परिक निष्ठा उसे आधुनिक प्रगतिवादी विचारधारा से सम्बद्ध नहीं कर पा रही थी, अतः प्रगतिवादी समुदाय ने 1923 में **भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद** की स्थापना की। आर्य समाज द्वारा किये जा रहे धार्मिक आक्षेपों के प्रतिवाद के लिए 1930 के दशक में **भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ** की स्थापना भी मथुरा में की गई और **जैन संदेश** साप्ताहिक पत्र उसके द्वारा प्रकाशित किया गया।

1981 में नवयुवक श्री निर्मल कुमार सेठी द्वारा महासभा का अध्यक्ष पद सम्भालने के बाद विगत 32 वर्ष में उनके नेतृत्व में इस संस्था का पुनरुद्धार और पुनर्गठन किया गया।

महासभा का मुख पत्र **जैन गजट** साप्ताहिक पत्र के रूप में 1895 से प्रकाशित हो रहा है। महासभा का कार्यालय 1981 में अजमेर से लखनऊ स्थानांतरित होने पर यह पत्र लखनऊ से प्रकाशित होने लगा और

प्रारंभ में कुछ वर्षो तक लखनऊ से इसके प्रकाशन में श्री अजित प्रसाद जैन की मुख्य भूमिका रही। लखनऊ से प्रकाशित होने पर इसके सम्पादन का दायित्व प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन ने सम्भाला। अब इसके सम्पादक श्री कपूर चंद जैन पाटनी हैं।

महासभा द्वारा महिलाओं में भी धार्मिक चेतना का प्रसार करने के लिए **जैन महिलादर्श** के नाम से एक मासिक पत्रिका का प्रारंभ सन् 1922 में आरा की पं. चंदाबाई जी के सम्पादकत्व में किया गया। यह पत्रिका 1922 से निरंतर प्रकाशित हो रही है। वर्तमान में इसकी संपादिका डॉ. (श्रीमती) नीलम जैन हैं।

2002 ई. में **श्रुत संवर्धिनी** के नाम से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। इसका उद्देश्य विशेष रूप से जैन सिद्धांतों और साहित्य का इस प्रकार प्रचार करना है कि वह सामान्य जिज्ञासु को जैन धर्म के बारे में अवगत करा सके और नव युवाओं का भी आवश्यक मार्गदर्शन कर सके।

2002 में ही **प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार** के नाम से भी एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया गया। इसका उद्देश्य जैनों के पुरातत्व और प्राचीन धार्मिक स्थलों के बारे में जानकारी देना है।

इन दोनों पत्रिकाओं को प्रारंभ करने का श्रेय श्री निर्मल कुमार सेठी को है। **श्रुत संवर्धिनी** पत्रिका के प्रकाशन में विशेष सहयोग डॉ. विजय कुमार जैन का रहा और **प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार** पत्रिका में विशेष सहयोग डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' का रहा।

1981 से 2013 तक अर्थात् 32 वर्ष का अध्यक्ष पद पर सुदीर्घ कार्यकाल श्री निर्मल कुमार सेठी का रहा है। विगत 12 वर्षो में उन्हें अपने दो सुपुत्रों का वियोग भी सहन करना पड़ा। परन्तु महासभा की कार्यविधियों में श्री सेठी जी ने कोई व्यतिक्रम नहीं आने दिया। उनकी अध्यक्षता में महासभा ने विभिन्न क्षेत्रों में बहुविध प्रगति की और भारत के बाहर प्रवासी जैन समाज से भी महासभा की गतिविधियों का जुड़ाव हुआ।

हमारा श्री सेठी जी से विगत 42 वर्ष से निकट मैत्री पूर्ण सम्बन्ध रहा है। हमारी सदैव यह कामना है कि वे स्वस्थ रह कर समाज हित में कार्य के लिए तत्पर रहें और सभी मित्रगण के प्रति उनका सहज सद्भाव बना रहे।''

(8 जुलाई 2013 को श्री निर्मल कुमार सेठी ने 75 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली। उनकी **प्लेटिनम जयंती** पर **गौरव अभिनन्दन ग्रन्थ** का प्रकाशन प्रस्तावित था, जो सेठी जी के प्रति महासभा के लिए उनके कृतित्व और जैन समाज के लिए की गई उनकी सेवाओं के लिए अभिनन्दनीय प्रयास होता। एक समारोह 24 नवम्बर को सिरीफोर्ट आडीटोरियम, नई दिल्ली में आयोजित किया गया था परन्तु उसमें सेठी जी का अभिनन्दन गौण रहा और मुख्यता श्री अ.भा.दि.जैन महासभा की 121वीं वर्षगांठ ही रही। **गौरव अभिनन्दन ग्रन्थ** का प्रकाशित समाचार में उल्लेख नहीं है। कार्यक्रम को **श्री निर्मल कुमार सेठी हीरक जयंती महोत्सव** प्रचारित किया गया जो भी उचित नहीं था क्योंकि हीरक जयंती 60 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर होती है जबकि 75 वर्ष की आयु पर वह **प्लेटिनम जयंती** या **अमृत महोत्सव** कहलाती है। आयोजकों में सभी प्रबुद्ध नेताओं के नाम हैं, अतः यह अनावधानता देखकर विस्मय भी हुआ और क्षोभ भी हुआ।)

डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' के प्रति शुभ कामना संदेश

"यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' के सम्मान में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जाना प्रस्तावित है। जैन समाज द्वारा उनके 77वें वर्ष में यह सम्मान दिया जाना महत्वपूर्ण था, परन्तु यह विस्मय की बात है कि यद्यपि प्रस्तावना जनवरी 2013 में ही की गई थी, वह वर्ष के अन्त तक भी फलीभूत नहीं हुई। अपने उद्गार मैंने उसी अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशनार्थ भेजे थे।

1965 से डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' निरंतर पालि–प्राकृत साहित्य के अनुशीलन, शोधन और अध्यापन से सम्बद्ध रहे हैं। वर्तमान में इस वय में भी वे रामानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर, में जैन दर्शन पीठ में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हैं। प्राकृत, अपभ्रंश व संस्कृत के जैन ग्रन्थों के सम्पादन एवं अनुवाद के साथ ही उन्होंने पालि एवं संस्कृत में बौद्ध ग्रन्थों का सम्पादन और अनुवाद भी किया है। प्राकृत एवं जैन धर्म पर उनकी हिन्दी और अंग्रेजी में 29 कृतियां हैं। पालि एवं बौद्ध दर्शन पर भी 12 ग्रन्थ है। विभिन्न संस्थाओं द्वारा उन्हें 25 सम्मान भी प्राप्त हो चुके हैं जिनमें 2004 में पालि–प्राकृत के लिए प्राप्त राष्ट्रीय पुरस्कार भी सम्मिलित है।

अपने माता–पिता की स्मृति में एक चेरिटेबुल ट्रस्ट की भी उन्होंने स्थापना की है जिसके द्वारा निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त सन्मति रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डॉलाजी को स्थापित करके शैक्षणिक क्षेत्र में भी एक अभिनन्दनीय कार्य किया है। यह भी उनके परम सौभाग्य की बात रही कि उनकी विविध साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों में उन्हें अपनी विदुषी पत्नी डॉ. पुष्पलता जैन का सदैव सक्रिय सहयोग प्राप्त रहा।

डॉ. भागचंद्र जी से उनके लेखन आदि के माध्यम से मेरा परिचय प्रायः 30–35 वर्ष पुराना है। यह विचित्र संयोग की बात है कि साक्षात् मिलन का सुयोग नहीं बन पाया। **प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार** पत्रिका के सम्पादन से वे इसके प्रारंभ से ही विगत 10 वर्षो से जुड़े रहे हैं। इस पत्रिका में पुरातात्विक महत्व के लेख प्रायः प्रकाशित होते रहे हैं और इस लेखन में डॉ. भागचन्द्र अपना समुचित योगदान करते रहे हैं।

इतिहास और पुरातत्व का विद्यार्थी होने के नाते मेरी अभिरुचि इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री में प्रारंभ से ही रही है। मुझे याद पड़ता है कि मैंने कई बार अपने विचारों से भी डॉ. भागचंद्र जी को अवगत कराया है।

प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार के फरवरी 2013 के अंक में डॉ. भागचंद्र जी का एक लेख "आषाढ़सेन कौन था" प्रकाशित हुआ है। पभोसा के जिस अभिलेख को आधार बनाकर इस लेख को लिखा गया है उसका सही भाष्य मैंने **शोधादर्श 73** (जुलाई 2011) में अपने लेख Interpreting the Ancient Epigraphs of India में दिया है। **शोधादर्श** डॉ. भागचंद्र जी को नियमित रूप से भेजी जाती है। मुझे यह देखकर विस्मय हुआ कि आषाढ़सेन पर अपना लेख निबद्ध करते समय उन्होंने **शोधादर्श** में प्रकाशित मेरे लेख को अनदेखा किया। बहसतिमित्र के संदर्भ में विवेचन मेरी पुस्तक The Hathigumpha Inscription of Kharavela and the Bhabru Edict of Asoka में किया गया है जिसका द्वितीय संस्करण भी 2000 में प्रकाशित हो चुका है। हाथीगुम्फा अभिलेख तथा खारवेल के विषय में **शोधादर्श** में भी मेरी पुस्तक के आश्रय से पर्याप्त सामग्री प्रकाशित हुई है परन्तु उसका अवलोकन भी कदाचित् डॉ. भागचन्द्र जी नहीं कर पाये हैं।

पभोसा के संदर्भित अभिलेख में यह स्पष्ट उल्लेख है कि आषाढ़सेन ने वह गुफा कंश्यपीय अर्हतों के निमित्त से निर्मित कराई थी। बौद्ध

साहित्य में सात तीर्थकों का स्पष्ट उल्लेख है, यथा गौतम बुद्ध, निगंठ नातपुत्त (महावीर), पूरण कस्सप, मक्खलि गोशाल, पकुद्ध कच्चायन, संजय बेलठ्ठीपुत्त और अजित केसकम्बलिन। गौतम बुद्ध के अनुयायी बौद्ध कहलाये, निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र महावीर के अनुयायी जैन कहलाये और मक्खलि गोशाल ने आजीवक सम्प्रदाय की स्थापना की जिसका उल्लेख मौर्य सम्राट दशरथ के अभिलेखों में ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी में मिलता है। पूरण कस्सप के अनुयायी कस्सपीय अरहंत के रूप में प्रचार को प्राप्त हुये जिनका अभिलेखीय उल्लेख आषाढ़सेन के उपरोक्त पभोसा में प्राप्त अभिलेख में उपलब्ध है। **कस्सपीय अरहंत** किसी भी प्रकार जैन धर्म से सम्बन्धित नहीं है। जैन और बौद्ध साहित्य के मनस्वी अध्येता एवं अनुसन्धानकर्ता विद्वान से इस तथ्य की अनदेखी किया जाना अटपटा लगा। शोधात्मक लेखन में पंथवाद से ऊपर उठकर चिन्तन–मनन अपेक्षित है। डॉ. भागचंद्र जी द्वारा इस ओर दृष्टिपात न किया जाना उनकी आम्नायपरक प्रवृत्ति का प्रतिफल है जो, मेरा विश्वास है, अनावधानतावश हुआ है।

डॉ. भागचन्द्र 'भास्कर' जी के प्रति हमारी हार्दिक शुभ कामना है कि वे अपनी विदुषी पत्नी डॉ. पुष्पलता जी के साहचर्य में अपने सारस्वत अभियान में, स्वस्थ रहकर, प्रवृत्त रहें और जीवन में उन्नति की ओर निरंतर आगे बढ़ते रहें।"

हमारे साथ शोधादर्श का समस्त परिवार और तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यश–वृद्धि के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और कामना करते हैं कि स्वस्थ–सानन्द रहकर वे अपनी साहित्यिक–सामाजिक प्रवृत्तियों में अग्रसर रहें।

– डॉ. शशि कान्त

शोक संवेदन

जुलाई से दिसम्बर 2013 की अर्धवर्षीय अवधि में कुछ विशिष्ट प्रबुद्ध मित्रों का वियोग हो गया। इनका स्मरण यहां अभिप्रेत है।

डॉ. शैलनाथ चतुर्वेदी : का जन्म 17–2–1933 को हुआ था। 80 वर्ष की वय प्राप्त कर वे 8 जुलाई 2013 को हमसे सदा के लिए बिछुड़ गये। लखनऊ विश्वविद्यालय से उन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की थी और बाद को गोरखपुर विश्वविद्यालय से पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी। गोरखपुर विश्वविद्यालय में ही वह प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग के अध्यक्ष पद से 1995 में सेवा निवृत्त हुये थे और तभी से हमारा उनसे निकट सम्पर्क था। उन्होंने भगवान महावीर की निर्वाण स्थली पावा की जिला कुशीनगर में फाज़िलनगर स्थान से पहचान सुनिश्चित किये जाने में अपना विशेष सहयोग दिया था। सेवा निवृत्ति के बाद उनका आवास लखनऊ में ही रहा और उन्होंने लखनऊ के आधुनिकीकरण से सम्बद्ध रहे बाबू गंगा प्रसाद वर्मा को विस्मृति के गर्भ से निकाल कर अपनी पुस्तक द्वारा पुनर्जीवित किया। बाबू गंगा प्रसाद वर्मा के नाम से अमीनाबाद में भवन और पुस्तकालय स्थित हैं। अमीनाबाद का आधुनिक रूप और चारबाग स्टेशन से उसे मिलाने वाली लाटूश रोड (गौतमबुद्ध मार्ग) तथा अमीनाबाद रोड, अमीनाबाद का पार्क और झण्डे वाला पार्क वर्मा जी की ही देन हैं, इस तथ्य को डॉ. चतुर्वेदी ने ही उजागर किया। लखनऊ के सम्बन्ध में उन्होंने एक पुस्तकमाला भी निकाली जिसके लगभग 25 अंक प्रकाशित हुये हैं। उनका निधन अल्प–अवधि व्याधि से अकस्मात् ही हो गया जिसकी सूचना पाकर हमें मर्मान्तक दुख हुआ।

श्री कैलाशचन्द चौधरी : का सनावद में 23 जुलाई को 69 वर्ष की अवस्था में हृदयाघात् से निधन हो गया। वह निमाड़–मालवा क्षेत्र के प्रमुख समाज सेवी थे और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से सम्बद्ध रहे थे।

श्री जय प्रकाश जैन : का जन्म 6–8–1925 को हुआ था। 14 अगस्त को मेरठ में उनका निधन हो गया। हस्तिनापुर क्षेत्र से वह अपने अंतिम समय तक जुड़े रहे। विगत लगभग 50 वर्ष से वह स्कालरशिप फण्ड का संचालन कर रहे थे जिसके माध्यम से बहुत से जैन युवक–युवतियों ने उच्च

एवं प्राविधिक शिक्षा प्राप्त की। संयोग से वह हमारे चाचा जी थे और हमारे परिवार में उन्होंने सर्वाधिक 88 वर्ष से ऊपर की आयु प्राप्त की।

श्री जमनालाल जैन : का जन्म वर्धा में 18–12–1922 को हुआ था। विगत 2 वर्ष से वे शय्याग्रस्त थे और लगभग 92 वर्ष की आयु प्राप्त कर उन्होंने 7 सितम्बर को वाराणसी में देह त्याग किया। 1947 से भारत जैन महामण्डल से वे जुड़े और **जैन जगत** (मासिक) का उन्होंने सन् 1954 तक प्रकाशन किया। 1955 से वे वर्धा से वाराणसी आ गये और उन्होंने अपना उपयोग साहित्य सेवा में लगाया। तभी से उनका सम्पर्क पिता जी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन से हुआ। शुचिता प्रकाशन के नाम से उन्होंने प्रकाशन का कार्य भी किया और पिता जी से Essence of Jainism पुस्तक का प्रणयन कराकर उसका प्रकाशन किया। उनसे हमारा सम्पर्क विगत 20 वर्ष से रहा। उनके कुछ ग्रन्थों का परिचय **शोधादर्श** में दिया गया है। उनके सुपुत्र डॉ. अभय कुमार जैन 'श्रीमती विजयादेवी जमनालाल जैन सेवा समिति' के माध्यम से जमनालाल जी के सामाजिक, शैक्षणिक और साहित्यिक कार्यों को आगे बढ़ा रहे हैं, यह संतोष की बात है।

श्री विजेन्द्र कुमार जैन : हमारी समिति के उपाध्यक्ष श्री महेन्द्र प्रसाद जैन के अनुज थे। वह गवर्नमेंट पॉलिटेक्निक लखनऊ से मई 2000 में सेवा निवृत्त हुये थे। दिनांक 7 दिसम्बर को उनका निधन हो गया। वह 71 वर्ष के थे। उसके पूर्व दिनांक 13 नवम्बर को उनकी पत्नी श्रीमती सत्यवती जैन का भी निधन हो गया।

उपरोक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति हमारी और शोधादर्श परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है और शोक से संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक सम्वेदना निवेदित है।

– डॉ. शशि कान्त

आभार

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के शोध पुस्तकालय को निम्नलिखित महानुभावों ने पुस्तकें भेंट की हैं जिसके लिए समिति उनकी आभारी है।

साहित्य भूषण डॉ. परमानन्द जड़िया

ने स्वरचित 24 पुस्तकें और दो सम्पादित पुस्तकें भेंट की हैं। इनमें 9 काव्य ग्रन्थ हैं – **दर्पण, छन्द छपाकर, अभिव्यंजना, मेरा कुछ न तुम्हारा कण–कण, शब्द सुमन माला, पंचामृत, दोहा–दर्पण, समय के स्वर** और **श्रृंखला** ; तीन महाकाव्य हैं – **गंगा नन्दन भीष्म, कौशलेन्दु भरत** और **मीरा बाई**; एक अवधी में महाकाव्य है – **वीर अर्जुन**; 6 कथा संग्रह हैं – **आकांक्षा, साधना के सोपान, गल्प गंगा, नमो नारायण, काजल की कोठरी** और **अहिंसा परमोधर्मा**; दो निबन्ध संग्रह हैं – **चिन्तन–चन्द्रिका** और **मेरे विचारात्मक निबन्ध**; एक उपन्यास **(दिव्य दंपति)**, एक खण्ड काव्य **(द्वन्द युद्ध)** और एक काव्य संकलन **(सर्जना)** हैं। सम्पादित ग्रन्थों में श्री मुरलीधर रस्तोगी 'मुरली' की कृतियां **मुरली के स्वर** और **पाण्डुलिपियों के प्रकाशित पृष्ठ**, हैं।

श्री सुरेन्द्र कुमार जैन (वी.आई.पी. पेपर वाले)

ने 1951 में प्रकाशित **ज्ञान गंगा** ओर 1959 में प्रकाशित **सूक्ति सागर** तथा मुनि सौरभ सागर के पद्यानुवाद सहित **कल्याण मंदिर स्तोत्र** भेंट की हैं। **सूक्ति सागर** और **ज्ञान गंगा** दुर्लभ ग्रन्थ है।

श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री (नाका हिन्डोला, लखनऊ)

ने आर्यिका चन्दनामती के रजत दीक्षा महोत्सव पर प्रकाशित **प्रज्ञा–पुञ्ज** की प्रति भेंट की है। चन्दनामती जी श्रीमती त्रिशला जैन की सांसारिक जीवन की बहन है।

श्रीमती रीना जैन (लोकमानगंज, लखनऊ)

ने तीर्थधाम मंगलायतन, सासनी से प्रकाशित और अमेरिकावासी डॉ. किरीत पी. गोसलिया द्वारा अंग्रेजी में अनूदित कविवर पंडित दौलतराम जी द्वारा रचित **छह–ढाला (Chhaha Dhala)** की प्रति भेंट की है।

– नलिन कान्त जैन, महामंत्री

समाचार विविधा

अखिल भारतीय प्राकृत विद्या फाण्डेशन

एम.एल.सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, के डॉ. जिनेन्द्र कुमार जैन ने सूचित किया है कि 19–20 जुलाई को राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के जयपुर परिसर में आयोजित राष्ट्रीय प्राकृत संगोष्ठी में एक अखिल भारतीय प्राकृत विद्या फाण्डेशन के गठन का निश्चय किया गया। यह फाण्डेशन प्राकृत, अपभ्रंश एवं पालि के विद्वानों का अकादमिक मंच होगा और इसका प्राथमिक कार्य सरकार द्वारा एक स्वतंत्र प्राकृत अकादमी को स्थापित कराना तथा प्राकृत–शिक्षण एवं शोध कार्यों में सहयोग कराना होगा।

मानव जीवन में श्रावकाचार की भूमिका

26–27 अगस्त को कुण्डलपुर (दमोह) में मानव जीवन में श्रावकाचार की भूमिका पर राष्ट्रीय युवा विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी के निर्देशक ब्र. जयनिशांत जैन (टीकमगढ़) थे, मुख्य समन्वयक पं. सुनील शास्त्री (सोजना) थे, तथा संयोजक श्री सुनील जैन 'सचय' (ललितपुर) थे। संगोष्ठी में चार सत्रों में विद्वानों द्वारा लेखों की प्रस्तुति की गई।

केन्या में आतंकवादी हमला

21 सितम्बर को नैरोबी (केन्या) के मॉल में आतंकी हमले में श्री मनोज जैन के 8 वर्षीय पुत्र प्रमसू की हत्या हो गयी। श्री मनोज जैन मूलतः ललितपुर के निवासी हैं और नैरोबी में बैंक आफ बड़ौदा में चीफ मैनेजर के पद पर नियुक्त हैं। यह समाचार प्राप्त होने पर ललितपुर का पूरा शहर शोक में डूब गया और शहर की सभी राजनीतिक पार्टियों ने गहरी शोक संवेदना व्यक्त करते हुये दिवंगत को श्रद्धांजलि अर्पित की।

इस आतंकी हमले के बाद केन्या में बसे भारत के जैन समुदाय ने आतंक से प्रभावित लोगों की तत्काल सहायता की। नैराबी के वेस्ट गेट मॉल में जिहादी हमला हुआ था। उस मॉल से करीब 100 मीटर की दूरी पर ओसवाल धार्मिक केन्द्र है जहां जीवित बचे लोगों, सुरक्षाबलों और पत्रकारों को सुरक्षित पनाह दी गई। कुछ ही घण्टों के भीतर कई जैन परिवार अपने घरों से फलों का ताजा रस ले आये। स्वयं सेवकों ने धार्मिक केन्द्र के भीतर आतंक से प्रभावित लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था की।

दून वैली हाई स्कूल

इन्दिरा नगर, लखनऊ, में स्थित दून वैली हाई स्कूल में 17 नवम्बर को वार्षिक छात्र दिवस मनाया गया। समारोह में अध्यक्षता के लिए डॉ. शशि कान्त को आमंत्रित किया गया। विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों की अध्यक्ष ने प्रशंसा की और छात्रों को शिष्टाचार एवं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति जागरूक रहने की प्रेरणा दी। इस विद्यालय के माध्यम से लखनऊ में इसकी संचालिका एवं प्राचार्या डॉ. बीना जैन, अपने पति डॉ. कमल कुमार जैन के सहयोग से, शिक्षा के क्षेत्र में प्रेरणास्पद कार्य कर रही हैं।

जैन मिलन, लखनऊ

जैन मिलन, लखनऊ, द्वारा 4 अगस्त को वीर शासन जयंती का आयोजन किया गया जिसमें श्री अजय कुमार जैन कागजी को "मिलन उपलब्धि सेवा सम्मान–2013" प्रदान किया गया। इस अवसर पर सआदतगंज की महिला जैन समाज द्वारा 'महासती मैना सुंदरी' धार्मिक नाटिका प्रस्तुत की गई।

कवि फूलचंद जैन 'पुष्पेन्दु' शताब्दी जयंती समारोह का आयोजन 22 अगस्त को किया गया। इसमें 'पुष्पेन्दु शताब्दी सम्मान–2013' डॉ. दाऊजी गुप्त, पूर्व महापौर, को और 'पुष्पेन्दु साहित्य सेवा सम्मान–2013' श्री सुरेश कुमार 'आवारा' नवीन' को प्रदान किया गया।

29 सितम्बर को विश्व मैत्री दिवस का आयोजन किया गया। इस अवसर पर चिकित्सा और शाकाहार के क्षेत्र में विगत 40 वर्षो से महनीय कार्य के लिए डॉ. डी.सी. जैन को 'विश्व मैत्री सेवा सम्मान–2013' प्रदान किया गया।

आचार्य ज्ञान सागर स्मृति डाक टिकट

सितम्बर में कवि और विद्वान आचार्य ज्ञान सगर की स्मृति में भारत सरकार द्वारा डाक टिकट जारी किया गया। इसका विधिवत् उद्घाटन मदनगंज–किशनगढ़ में भारत सरकार के मंत्री माननीय श्री सचिन पायलट द्वारा किया गया।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ में 25 सितम्बर से 9 अक्टूबर तक **जैन विद्याः सिद्धांत एवं व्यवहार** विषय पर राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन किया

गया। कार्यशाला में जैन धर्म व दर्शन के निम्नलिखित विषयों पर व्याख्यान हुये – जैनागम साहित्य, सल्लेखना की अवधारणा एवं जैन पर्व और त्यौहार; जैन साहित्य, महावीर कालीन इतिहास, महावीरोत्तर कालीन इतिहास एवं जैन श्रावकाचार; भारतीय संस्कृति एवं दर्शन की विशेषताएं; जैन कला एवं जैन प्रतिमा विज्ञान; जैन अभिलेख; जैन ज्योतिष; जैन दर्शन में अनेकांतवाद, जैन धर्म में गुण स्थान सिद्धांत की अवधारणा एवं श्रमणाचार पश्चिम भारत के जैन मंदिर; पाण्डुलिपियों का सामान्य परिचय; जैनाचार्यो का दार्शनिक साहित्य को अवदान, जैन आगमों की व्याख्याएं, जैन धर्म एवं धार्मिक सहिष्णुता तथा जैन आध्यात्मिकता, द्रव्य गुण पर्याय, जैनवियोग, कर्म सिद्धांत, लेश्या सिद्धांत, स्यादवाद एवं सप्तभंगी, नय निक्षेप; जैन सम्प्रदाय; भारतीय दर्शन में ज्ञान की अवधारणा; जैन ज्ञान मीमांसा, जैन दर्शन में आत्मा की अवधारणा एवं जैव नैतिकता; जैन सप्त तत्व एवं जैन नव तत्व की अवधारणा, जैन प्रमाण मीमांसा, षड् द्रव्य की अवधारणा, जैन दर्शन एवं गांधी विचार, तथा शाकाहार; और जैन कोष साहित्य।

इसका विवरण **श्रमण**, जुलाई–सितम्बर 2013, में प्रकाशित हुआ है। इण्टरनेशनल स्कूल फॉर जैन स्टडीज़ द्वारा 1 जून से 8 अगस्त तक निष्पादित कार्यक्रमों की सूचना भी दी गई है। इसी अंक में 7 विदेशी विद्वानों के जैन धर्म से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर अंग्रेजी में आलेख भी संकलित हैं।

वालचन्द इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी, सोलापुर

1885 में स्थापित यह इन्स्टीट्यूट छात्रों को इन्जीनियरिंग की विभिन्न विधाओं में शिक्षा देने के साथ ही जैन संस्कार देने के कार्यक्रम से जुड़ा है। महाराष्ट्र प्रदेश में यह जैन अल्पसंख्यक इन्स्टीट्यूट के रूप में मान्य है और इसमें जैन छात्रों के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण है। अक्टूबर में All India Council of Technical Education और Confederation of Indian Industries द्वारा एक सर्वेक्षण के आधार पर इसे Pennar Industries Award for Best Industry-linked Institute of Civil Engineering के रूप में सम्मानित किया गया। इस संस्थान की यह ख्याति जैन समाज के लिए गौरव की बात है।

डॉ. शशि कान्त सह सौ. मंजरी जैन के दाम्पत्य की हीरक जयंती

यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है कि पिता जी और माता जी

के दाम्पत्य जीवन की हीरक जयंती 27 नवम्बर को सम्पन्न हुई। 1805 से हमारे वंश का जो इतिहास उपलब्ध है उसमें छठी पीढ़ी में यह आयोजन सम्पन्न हो सका है। इसके पहले बाबा जी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के दाम्पत्य की स्वर्ण जयंती 12 फरवरी 1979 को और छोटे बाबा जी श्री अजित प्रसाद जैन के दाम्पत्य जीवन स्वर्ण जयंती भी हम 1987 में मना चुके थे परन्तु हीरक जयंती मनाने का सौभाग्य परिवार में पहली बार अभी मनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

पिता जी की इच्छा के अनुसार आयोजन को सीमित पारिवारिक रूप में ही सम्पन्न किया गया। कुछ घनिष्ठ मित्र इसमें आमंत्रित थे। हमारी मौसी श्रीमती शारदा जैन और पिता जी के समधी डॉ. ओम प्रकाश गुप्ता तथा श्री बिजय लाल जैन ने अपनी शुभ कामना से आयोजन को सुवासित किया। श्री लूण करण नाहर जैन, श्री आलोक जिन्दल, श्री वीरेश मित्तल और श्री निशीथ कंसल तथा निकट सम्बन्धी सभी ने आयोजन में उत्साह पूर्वक सहयोग किया। इस अवसर पर अनुज श्री अंशु जैन 'अमर' ने अपने जो भावपूर्ण उद्गार प्रकट किये वे नीचे प्रस्तुत हैं:–

आज ज़श्न का हर लम्हा मुबारक हो,
सुर्ख जोड़े में लिपटी
उस रात की हर याद मुबारक हो!
शशि कान्त में डूबी
मंजरी के हर पुष्प की खुशबू मुबारक हो!
जगमग करती इत्र में डूबी
इस खुशनुमा ज़िन्दगी की हर बात मुबारक हो!
ऊबड़–खाबड़ पगडण्डियों पर
साठ बरस का यह साथ मुबारक हो!
यह सफर रहे कयामत तक बरकरार, मुबारक हो!
अंशु–निधि से रहे रौशन
और रहें स्वस्थ
पलक की दुआएं मुबारक हों!
सुर्ख जोड़े में लिपटी उस रात की हर बात मुबारक हो!

– नलिन कान्त जैन

✧✧✧

पाठकों के पत्र

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, लखनऊ/भिलाई

शोधादर्श–77 निश्चित रूप से स्तरीय शोध अंक है। सामान्य स्तम्भों के अतिरिक्त कतिपय लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण, ज्ञानवर्द्धक और चिन्तनपरक हैं। श्री कैलाश नारायण टण्डन एक सुधी–विचारवान रचनाकार हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत अंक में उनका चिन्तनपरक लेख **मुर्दे की दुनिया** है। इसमें उन्होंने वर्तमान समाज के अशान्त, अन्यायपूर्ण, संवेदनारहित एवं घिनौने रूप पर करारा कटाक्ष किया है। मैंने पूरे लेख में अनेक वाक्यों को रेखांकित किया है जिनमें लेखक की वेदना मुखर हो उठी है।

प्रथम महिला स्वतंत्रता सेनानी : जैन रानी अब्बक्का देवी के माध्यम से श्री आदिकुमार भगवन्तराव बण्ड ने हम उत्तर भारतीयों के लिए दक्षिण भारत की सोलहवीं शती के अजाने इतिहास की एक आभामयी रानी के उज्जवल व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अनूठा प्रसंग प्रस्तुत किया है। यदि रानी की राजधानी उल्लाला के प्राचीन जैन मंदिर, शिव मंदिर, मस्जिद के पुरावशेषों तथा कुछ वर्ष पहले प्रतिष्ठित उसकी अश्वारूढ़ा मूर्ति के कतिपय चित्र भी छपे होते तो लेख का महत्व द्विगुणित हो जाता। संभवतः अब इण्टरनेट से यह चित्र मिलना सम्भव है। इस लेख से कर्नाटक के उक्त भाग में मातृसत्तात्मक प्रथा पर भी प्रकाश पड़ा है। दोनों लेखों के विद्वान रचनाकारों को भूरिशः बधाई!

अशुद्धं पुस्तकं शत्रुः प्रो. वीर सागर जैन का महत्वपूर्ण लेख है। पुस्तकों के अशुद्ध छपने का एक कारण अच्छी तरह प्रूफ–रीडिंग न किये जाने को भारी प्रमाद और घोरतिघोर अपराध बताया गया है। मैं बड़े संकोच के साथ लिख रहा हूं कि ऐसे विषय वाले लेख में भी प्रूफ–रीडिंग की त्रुटि आ गयी है। पृ. 61 पर तीन बार 'शत्रु' शब्द 'शुत्र 'छप गया है। **शोधादर्श** में भाषायी त्रुटि मेरे संज्ञान में पहली बार आयी है। अनायास आयी त्रुटि की ओर संकेत करने से मैंने पहले अपने को रोका, परन्तु यह सोचकर लिखना पड़ा कि त्रुटि की अनदेखी से न पाठकों का भला होगा, न सम्पादक का।

लेखों के ही समान प्रस्तुत अंक की कई कविताएं/गीत भी ओजस्वी और चिन्तनपरक लगे। डॉ. विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद', डॉ. परमानन्द जड़िया, श्री रवीन्द्र कुमार' 'राजेश' तथा श्री अरविन्द कुमार जैन 'गुंजन' की काव्य रचनाएं इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। रचनाकारों के पते एवं रचनाओं के अन्त में सम्पादकीय टिप्पणी का आरम्भ स्वागतार्ह्य है। **शोधादर्श** के समस्त सुधी पाठकों, रचनाकारों एवं सम्पादकों को नवागत वर्ष 2014 की शुभ कामनाएं – सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः!

(डॉ. श्रीवास्तव द्वारा मुद्रण त्रुटि की ओर ध्यान आकर्षित करना उचित है। पर्याप्त सावधानी के बाद भी अनावधानतावश त्रुटि रह जाती है, इसके लिए खेद है। – सम्पादक)

श्री कैलाश नारायण टण्डन, कानपुर

शोधादर्श–77 यद्यपि कुछ प्रतीक्षा के बाद मिला परन्तु पूर्ण साज–सज्जा के साथ, पूर्व की भांति विभिन्नता और मननीय सामग्री से लबालब भरा हुआ है। 'देर से आए लेकिन दुरुस्त आए'। आद्योपांत पढ़कर उल्लास और उत्साह की अनुभूति हुई।

मुखपृष्ठ पर चित्रांकित श्रुत देवी सरस्वती का चित्र राजपूत कालीन मूर्ति कला का अप्रतिम उदाहरण है। उसकी दृष्टि मात्र ही अपने कलात्मक सौंदर्य की अनूठी छाप पाठक पर छोड़ जाती है।

स्व. श्री अजित प्रसाद जैन ने अपने सारगर्भित गवेषणात्मक लेख में 'तीर्थंकर महावीर की जन्म नगरी पर विवाद' को अनुचित और अनावश्यक बताने का तर्कसंगत प्रयास किया है। जैन समाज के लिए उनका यह सुझाव अनुकरणीय है।

श्री राजीव कान्त जैन का आशावादी चिंतन को लेकर 'ठौर मिलता जरूर है' काव्यात्मक एवं भावनात्मक दृष्टि से उच्च कोटि का है।

विद्यावारिधि इतिहास–मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की 25वीं पुण्य तिथि से संबंधित चित्रावली की जितनी प्रशंसा की जाये कम है।

साहित्य–भूषण डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ

शोधादर्श के मुख पृष्ठ पर वाग्देवी का मन भावन चित्र हृदय की गहरायी तक उतर गया। यह अंक भी एक प्रकार से विशेषांक का रूप लिये हुये है क्योंकि यह श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की 25वीं पुण्य तिथि पर और उनके द्वारा स्थापित पुस्तकालय की सहायता से शोध सम्पन्न

करने वाले चौदह शोधार्थियों को स्मृति–चिन्ह देकर सम्मानित करने सम्बन्धी समारोह के कार्यवृत्त तथा चित्रावलि को अपने अन्तर में समेटे हुये है। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन बड़े भाग्यशाली थे। उनके परिवार के सभी पोते–पोती खूब पढ़े–लिखे तथा अपने बाबा के प्रति अगाध श्रद्धा रखने वाले हैं। ऐसा बहुत कम देखने में आया है, विशेष रूप से वर्तमान समय में जब कि लोग मां–बाप को भी भूल जाते हैं। डॉ. साहब की पौत्री डॉ. अलका अग्रवाल ने अपने बाबा के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह बड़ा हृदय स्पर्शी है। उनके ज्येष्ठ पुत्र डॉ. शशि कान्त ने समारोह के आवाहन पर अपने पिता का जो परिचय दिया वह बड़ा उत्प्रेरक है। मैंने रुचिपूर्वक इसे पढ़ा और आनन्द लिया है। श्री अरविन्द कुमार जैन 'गुंजन' की कविता **हृदयोद्गार**, श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश' की कविता **जीवन परिभाषा** तथा **जियो और जीने दो** अच्छी हैं। श्री राजीव कान्त जैन का आशावादी चिन्तन **ठौर मिलता जरूर है** नये तेवर के साथ है, अच्छा है। स्मरण, समाचार विविधा सभी कुछ पढ़ गया। अच्छा लगा। आपको सुसम्पादन हेतु अशेष बधाई!

श्री बी.डी. अग्रवाल, लखनऊ

मैंने **अंक 76** को आद्योपान्त पढ़ा। बड़ी मेहनत के साथ किया गया लेखों का सुन्दर चयन और उनका प्रस्तुतिकरण प्रशंसनीय है। श्री कैलाश नारायण टण्डन के लेख **आवागमन का वैज्ञानिक अर्थ** से मैं बहुत प्रभावित हुआ। सौ. शेफाली मित्तल की लघु बोध कथा **कनु** प्रशंसनीय है। उसे मेरी शुभ कामनायें व आशीर्वाद!

शोधादर्श–77 में समस्त सामग्री अत्यन्त परिश्रम के साथ चुनी हुई एवम सूचनावर्धक है। इसके लिये आपके मार्गदर्शन में सम्पादक मण्डल का कार्य प्रशंसनीय है। श्री कैलाश नारायण टण्डन के लेख **मुर्दे की दुनिया** की जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी ही होगी। श्री आदिकुमार भगवंतराव बंड का लेख **जैन रानी अब्बक्का देवी** इतिहासकारों की आंखे खोल देने वाला है। झांसी की रानी लक्ष्मी बाई की तरह इसके ज्ञान के प्रसार व प्रचार की आवश्यकता है। रानी के जीवन पर चलचित्र का निर्माण अत्यन्त आवश्यक जान पड़ता है।

श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर

शोधादर्श –77 के आवरण पृष्ठ पर राजस्थान के जिला बीकानेर के अन्तर्गत पल्लू नामक स्थान से प्राप्त 12वीं शती की चाहमान कला की सरस्वती

की प्रतिमा का चित्र है। पूर्ण विकसित पद्मपुष्प पर सरस्वती त्रिभंग मुद्रा में खड़ी है। उसकी चारों भुजाओं में अक्षमाला, श्वेत कमल, रेशमी डोरी से बंधी हुई ताड़पत्रिय पाण्डुलिपि, तथा जल कलश, हैं। यह जैन मूर्ति कला का सुन्दर मनमोहक उदाहरण है और भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की बढ़िया मिसाल होकर अवलोकनीय है। यह कृति राष्ट्रीय संग्रहालय में संग्रहीत है।

शोधादर्श के आद्य सम्पादक श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन जी की 25वीं पुण्यतिथि पर 11 जून, 2013, को एक विशेष आयोजन कर उनका स्मरण किया गया। तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के अन्तर्गत उनके द्वारा स्थापित शोध पुस्तकालय का उपयोग कर जैन इतिहास, संस्कृति, धर्म और साहित्य पर 14 शोधार्थियों ने शोध कार्य सम्पन्न किया। जैन साहब की स्मृति को कायम रखने के लिए 2013 के अर्ध वर्ष की समाप्ति पर **शोधादर्श** का प्रस्तुत अंक 77 सामने हैं। मैं भी डॉ. साहब के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि प्रस्तुत कर उनकी आत्मा की शांति हेतु प्रार्थना करता हूं। ईश्वर उनके परिवार को भी कुशलतापूर्वक रखे, यही कामना है।

भगवती आराधना के रचनाकर आचार्य शिवकोटि का स्मरण स्तुति योग्य है। उन्होंने (सम्यक्) दर्शन सहित (सम्यक्) ज्ञान, (सम्यक्) तप और (सम्यक्) चारित्र का दर्शन कराया।

महावीर की जन्म नगरी पर विवाद सम्बन्धी आलेख गंभीरता से देखने योग्य है और गवेषणा के आधार पर प्राचीन विदेह देशान्तर्गत वैशाली के निकट वासोकुंड या क्षत्रियकुंड (कुंडग्राम) को भगवान महावीर का सही जन्म स्थल चिन्हित किया गया है जिसे अधिकांश दिगम्बर जैन विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार महावीर की निर्वाण भूमि के रूप में कुशीनगर जिले में स्थित पावानगर अब सर्वमान्य है।

अंक में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की जीवन यात्रा और साहित्यिक रुचि का पूर्ण विवरण बड़ी कुशलता व दूरदर्शिता के साथ प्रस्तुत है जो गंभीरता से ध्यान देने योग्य है।

अपने शब्दों में कहना चाहूंगा कि विश्व में ऐसे ही साहित्यकार सराहनीय और पूजनीय हैं जो लोगों को सत्पथ का अवलोकन कराते हैं।

अन्त में, कहना चाहूंगा कि "अपने कर्तव्यों के प्रति सजग, सरल और सहज बनिए। धैर्य और साहस का सम्बल लेकर आगे बढ़िए। और सच्चा इन्सान कहलाने का गौरव हासिल करिए।"

शोधादर्श के आजीवन अभिदाता

1 श्री अवनीश गर्ग जैन एवं श्रीमती रेखा गर्ग, लखनऊ–226001
2 डॉ. आर. के. अग्रवाल, लखनऊ–226012
3 डॉ. (श्रीमती) इन्दु रस्तोगी, लखनऊ–226010
4 डॉ. एस.के. जैन, लखनऊ–226010
5 श्री कमल सिंह रामपुरिया, हावड़ा–711101
6 डॉ. (श्रीमती) कुसुम पटोरिया, नागपुर–440001
7 श्री के.एस. पुरोहित, गांधी नगर–382009
8 प्रो. के.डी. मिश्रीकोटकर, चांदुर बाजार–444704
9 श्री चक्रेश जैन, इन्दौर–452018
10 श्री ब्र. जयनिशान्त जैन, टीकमगढ़–472001
11 डॉ. जितेन्द्र बी. शाह, अहमदाबाद–380001
12 श्री प्रद्युम्नश्री महाराज (द्वारा श्री जितेन्द्र कापड़िया), अहमदाबाद–380007
13 श्री प्रवीन कुमार जैन, नई दिल्ली–110002
14 मुनिश्री प्रमाणसागरजी (द्वारा श्री संतोषकुमार जयकुमार),सागर–470002
15 श्री भरत कुमार मोदी, इन्दौर– 452001
16 श्री माणिक चन्द्र जैन लुहाड़िया, कुन्दकुन्द नगर, सोनागिर–475686
17 श्री रूप चन्द जैन कटारिया, नई दिल्ली–110001
18 श्री ललित सी. शाह, अहमदाबाद–380014
19 मुनिश्री विमलसागर जी (द्वारा डॉ. शैलेन्द्र हरण जी), उदयपुर–313001
20 श्री विवेक काला, जयपुर–302004
21 श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, गाजियाबाद–201010
22 श्री मुकेश जैन, एडवोकेट, मुजफ्फरनगर–251002
23 श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर– 251002
24 श्री शान्तीलाल जैन बैनाड़ा, आगरा–282002
25 श्री श्रीकिशोर जैन एवं श्री शरद कुमार जैन, दिल्ली–110051
26 श्री सतीश कुमार जैन, नई दिल्ली–110070
27 श्री ब्र. सन्दीप सरल, बीना–470113
28 श्री सुरेश चन्द्र जैन, मसूरी–248179
29 श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री, लखनऊ–226004
30 श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा, लखनऊ–226006

वर्ष 2013 का वार्षिक शुल्क प्रदायी पाठक

1 श्री अखिलेश जैन, लखनऊ
2 डॉ. (श्रीमती) आदिति श्रीवास्तव, लखनऊ
3 श्रीमती अनीता जैन, लखनऊ
4 श्री अशोक कुमार जैन, सतना (2014 भी)
5 श्री आदिकुमार भगवंतराव बंड, नागपुर
6 श्री कैलाश नारायण टण्डन, कानपुर
7 श्रीमती गीता जैन, लखनऊ
8 श्री दुलीचंद जैन, चेन्नई (2014 भी)
9 श्री धनप्रकाश जैन, मेरठ (2014 भी)
10 श्री पद्मराज कुमार जैन, आरा
11 श्री प्रकाशचंद्र जैन 'दास', लखनऊ
12 बी.एस.एम. (पी.जी.) कॉलेज, रुड़की (2014 भी)
13 श्री भरतेश कुमार जैन, सहारनपुर
14 श्री मगनलाल जैन, लखनऊ (2014 भी)
15 श्री महेशचंद जैन, सिकन्दराबाद (उ.प्र.) (2014 भी)
16 श्री मूलचन्द जैन बड़जाते, वर्धा
17 श्री रतन चन्द गुप्ता, लखनऊ
18 श्री रमेश चन्द्र जैन, फिरोजाबाद
19 श्री रवि प्रकाश जैन, लखनऊ
20 श्री विनय कुमार जैन, मशकगंज, लखनऊ (2014–15 भी)
21 डॉ. शिव प्रसाद, जयपुर
22 श्री संजय किशोर जैन, अग्रवाल, मुरादाबाद

✢✢✢

डॉ. शशि कान्त द्वारा
आभार निवेदन

श्री लूण करण नाहर जैन
द्वारा शुभ कामना

सुपौत्री आयु. मेहा द्वारा
फोटो–कोलाज भेंट

फोटो–कोलाज के
साथ दम्पति

आवश्यक सूचना

वार्षिक शुल्क 60 रु. (साठ रुपये), '**महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.,ज्योति निकुंज,चारबाग, लखनऊ–226004**', को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम व पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए पत्रिका का वार्षिक शुल्क 25 डालर है।

शोधादर्श अब षड्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक जून–अन्त और दिसम्बर–अन्त में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासम्भव लेख 3–4 टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को **ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004,** के पते पर भेजे जायें।

प्रत्यावर्तन में पत्रिका की केवल एक प्रति सम्पादक को उपरोक्त पते पर भेजी जाये।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेख में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

— **सम्पादक**